चार पुरुषार्थ जीवन एवं मृत्यु

रवीन्द्र कुमार पाठक

चार पुरुषार्थ
जीवन एवं मृत्यु

डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक

© सर्वजन सुलभ, 2017
अपने नज़रिए से इसे इस्तेमाल करने, पुनर्प्रकाशित करने के लिए आप स्वतंत्र हैं। हमें सूचना देंगे तो अच्छा लगेगा।

प्रकाशक

nf{k.k ,f'k;kbl gfjr Lojkt lokn
(साउथ एशियन डॉयलॉग्स ऑन इकोलोजिकल डेमोक्रेसी)
सिएमेनपू फाउंडेशन, फिनलैंड, के वित्तीय सहयोग से
बी ई – 14 ए, डी.डी.ए. फ्लैट्स,
मुनिरका, नई दिल्ली – 110067
ईमेल : networkscommunication@gmail.com

DAANISH
BOOKS
दानिश बुक्स्
संपादकीय कार्यालयः 13 सी, स्काईलार्क अपार्टमेंट्स,
गाजीपुर, दिल्ली– 110096
www.daanishbooks.com

ISBN : 978-93-81144-61-9

Published by:

South Asian Dialogues on Ecological Democracy (SADED)
(With financial support from Siemenpuu Foundation, Finland)
B E - 14 A, D.D.A. Flats,
Munirka, New Delhi- 110067
Phone: 011- 26101580
Email: networkscommunication@gmail.com

Printed by Multiplexus (India)
multiplexusindia@gmail.com

fo"k; lwph

निवेदन

प्रसंग

चार पुरुषार्थ, जीवन एवं मृत्यु

Hkkx & 1

चार पुरुषार्थ 12

धर्म 13

अर्थ 27

काम 29

मोक्ष 42

Hkkx & 2

'जीवन का अर्थ' और 'अर्थपूर्ण जीवन' 48

जीवन एवं मृत्यु 57

iLrkouk

bl पुस्तिका को आप पढ़ें, उसके पहले मेरी कुछ छोटी–मोटी बातों को ध्यान में रख लेंगे तो मेरे ऊपर आपकी मेहरबानी होगी। इससे आप को भी थोड़ी सुविधा होगी, मेरी बातों को समझने में।

यह पुस्तिका सप्रयास लिखी नहीं गयी है। यह बस दो लंबी बातचीत का संपादित अंश है। इस संवाद में, मैं मुख्य वक्ता भले था श्रोतागण मुझसे कई गुणा अधिक ज्ञानी, गुणी और गुण–ग्राही लोग थे, जिनमें श्री अनुपम मिश्र तो अब संसार छोड़ चुके। मृत्यु संबंधी भाषण के लिए एक प्रकार से उन्होंने मुझे छोड़ा था और स्वयं ही मृत्यु से मित्रता कर निकल गये।

उन जैसे वरिष्ठ श्रोताओं के आदेश पर बिना भाषा–व्याकरण की परवाह किए, सामान्य बातचीत के, सहज–से प्रेषणीय तरीके या अपनी मस्ती के प्रवाह में मैं बोला। और, एक बार तो अपने पिता की मृत्यु के समाचार के साथ किसी प्रकार संभलते हुए कुछ कहा।

इस मनोदशा एवं संवाद की शैली का ख्याल रख कर यदि आप भी आनंद लेना चाहेंगे तो आपको और मुझे दोनों को सुविधा होगी।

चार पुरुषार्थ वाले व्याख्यान से पूर्व एक वरिष्ठ मित्र ने मुझसे पूछा – 'यह जो चार पुरुषार्थ वाला वर्गीकरण है, वह हिन्दू समाज पर ही लागू होता है या अन्य धर्म वालों पर भी लागू हो सकता है?

मैंने बिना सोचे कहा– यह हिन्दू, भारतीय या मनुष्य क्या ? यह तो जीव मात्र पर लागू है। मेरी समझ आज भी ऐसी ही है। इसलिए इस संवाद में केवल शास्त्रीय बातों की जगह इस वर्गीकरण की सहज व्यापकता को अधिक महत्व दिया गया है। इसी कारण उद्धरणों की जगह कहावतों, किवदंतियों, समाज में प्रचलित पैमानों, रीति–रिवाजों पर अधिक भरोसा किया गया है क्योंकि वास्तविक जीवन में प्रगट रूप से तो ये ही मिलते, दिखाई देते हैं।

आगे आप भी चाहें तो अपने ढंग से महसूस कर सकते हैं और जी सकते हैं तथा संवाद भी कर सकते हैं।

श्री अनुपम मिश्र, गांधी शांति प्रतिष्ठान के आदेश पर पुराने समाजवादी समाजसेवी श्री विजय प्रताप भाई के संवाद ग्रुप, SADED, नई दिल्ली द्वारा आयोजित 'मीनिंग ऑफ लाइफ एंड मीनिंगफुल लाइफ' (जीवन का अर्थ और सार्थक जीवन) शृंखला के तहत मुझे भी कुछ कहने का अवसर मिला। उनके प्रस्ताव पर मैंने 9 मई 2015 को इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, नई दिल्ली में 'चार पुरुषार्थ' विषय पर एक व्याख्यान दिया और बाद में दिनांक 4

जनवरी 2016 को इसी स्थान पर जीवन और मृत्यु विषय पर भी बोलने का अवसर मिला।

यह पुस्तिका उन्हीं व्याख्यानों का थोड़ा संपादित रूप है। मेरी प्रस्तुति अनुपम भाई को बहुत अच्छी लगी और उन्होंने इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का सुझाव भी लगे हाथ दे दिया। व्याख्यान और पुस्तिका, दोनों में तालमेल बना रहे, ऐसा भरसक प्रयास किया गया है।

व्याख्यान के समय दिल्ली एवं आसपास के अनेक बुद्धिजीवी तथा समाजसेवी लोग उपस्थित थे। गांधीवादी, समाजवादी और पता नहीं कितने प्रकार के लोग थे। ऐसे में मान लिया गया था कि बहुत सारी बातें तो श्रोतागण जानते ही होंगे। उस व्याख्यान से पहले एक लिखित पर्चा भी बांटा गया था– इस आशा से कि लोग उसे पढ़कर आएंगे। इसलिए मूल व्याख्यान में कई जगहों पर उसकी ओर केवल इशारा ही है।

यही प्रसंग है इस पुस्तक का और भारत भूमि की परंपरा ही इसकी भूमिका है। उसी की समझ, पालन, निरंतरता तथा उलझन–सुलझन इस पुस्तिका की भी पृष्ठभूमि है।

मैं जो आपके बीच रखने वाला हूं, उसमें शास्त्रीय विद्वत्ता का पक्ष बिल्कुल नहीं है। मैंने इन विषयों को अपने लिए समझने की कोशिश में जो समझा और पाया, वही आपके सामने प्रस्तुत करूंगा। इसके विपरीत, चूंकि इसमें मेरी अपनी नई बात न के बराबर है, अतः सहज ही शब्दों से लेकर अर्थ और भाव तक, सभी शास्त्र एवं परंपरा पर ही आधारित हैं। यह इसलिए भी किया गया है ताकि आपको विषय के साथ समाज को भी जानने–समझने में सुविधा हो।

चार पुरुषार्थ या चतुर्वर्ग, दोनों शब्द चलते हैं। चार की गणना धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से ही होती है। पुरुषार्थ कहने पर पुरुष और उसके जीवन के लक्ष्य–उद्देश्य का महत्त्व भले दिखाई देता हो, इसे केवल आधुनिक 'जेंडर–कंशसनेस' की दृष्टि से मापना सही नहीं होगा क्योंकि भारत में धर्म–अध्यात्म के संदर्भ में किसी को केवल स्त्री या पुरुष माना ही नहीं जाता है। जीव चेतन पुरुष है, इस आधार पर यह जीव मात्र के लिए है। धर्म/रिलीजन तो बहुत छोटे दायरे वाले हैं और जीव स्त्री–पुरुष, दोनों हैं।

चार पुरुषार्थ मतलब है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हें पुरुषार्थ शब्द से तो जाना ही जाता है, चतुर्वर्ग नाम से भी जाना जाता है। महाराष्ट्र क्षेत्र की एक प्रसिद्ध धर्मशास्त्रीय पुस्तक है – चतुर्वर्ग चिंतामणि। धर्मशास्त्र से लेकर संस्कृत काव्य शास्त्र तक, सबका लक्ष्य चतुर्वर्ग में सफलता प्राप्ति है।

मानव जीवन के ये चारों लक्ष्य सबके लिए हैं। इन पर सबका अधिकार है। चूँकि सारे लोग देश, काल एवं अपनी पात्रता के भेद से भिन्न हैं अतः स्वाभाविक है कि सबके लिए एक ही प्रकार का धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष उपयुक्त नहीं होगा। इनमें भी विविधताएं हैं; फिर भी उनमें संगति के सूत्र मौजूद हैं। इन चारों शब्दों के अर्थ भी एक–एक नहीं, कई–कई हैं – यहाँ तक कि 'अर्थ' शब्द के दो अर्थ तो यहां भी लागू हैं।

चर्चा के पहले संक्षेप में इन चारों शब्दों के प्रचलित अर्थों पर ध्यान देने से सुविधा होगी।

/kel & LoHkko] dÙk0; ,o 0;oLFkk

vFk& vkthfodk] laifÙk vkj dj

dke& bPNk] fo'k"kdj ;kSu bPNk vkj mldh rfIr

ek{k & vKku] n%[k&vrfIr d c/ku l efDr] lai.k lhekvk l efDr

जब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अलग–अलग गणना करते हैं, उस समय प्रयुक्त 'अर्थ' शब्द एक पारिभाषिक परंपरागत अर्थ वाला शब्द होता है। उसका मतलब आजीविका, संपत्ति, संसाधन के साथ–साथ सरकारी राजस्व एवं कर व्यवस्था भी होता है।

इन अर्थों का कुछ लोगों ने विस्तार किया तो कुछ लोगों ने संकोच। ऐसा देख मैं भी अनेक बार दुविधाग्रस्त हुआ। धीरे–धीरे पता चला कि दुविधा का मूल कारण सुविधा खोजना है। सुविधावादी या एकांगी दृष्टि से विचार करने पर तो समस्या होगी ही।

भारतीय समाज विविधताओं से भरा है। जिस किसी के लिए यह विविधता ही समस्या है, उसके लिए मेरे पास कहने को कुछ नहीं है। जो विविधता को स्वीकार करते हैं, उनके साथ कुछ कहने और बांटने को मेरे पास भी कुछ है। सुविधानुसार किसी भी शब्द, बिंब या व्यवहार/आचरण का कोई एक ही स्वरूप, मतलब या अर्थ पकड़ कर अकड़ जाना स्वयं को धोखा देने जैसा है। यह ज्ञान का तरीका नहीं है।

चार का यह वर्गीकरण किसी एक ही धारा की बौद्धिक संपदा नहीं है। शब्दों की दृष्टि से भी धर्म और अर्थ लगभग सबको मान्य हैं। काम और मोक्ष की जगह निर्वाण, सुरति, महासुख आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

इन शब्दों के अर्थ की दृष्टि से यदि विचार करें, उनके वर्गीकरण और उनके औचित्य पर विचार करें, तभी वर्तमान संदर्भ में इनके स्वरूप और सार्थकता पर भी विचार किया जा सकता है।

मुझे तो लगता है कि मानव ही नहीं, सारे जीव इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगे हैं। काम के बिना सृष्टि ही नहीं होगी और अर्थ के बिना जीवन नहीं होगा। ये दोनों अकेले–अकेले हो नहीं पाते हैं। अतः व्यवस्था तो बनानी ही पड़ती है और उसे मानना भी पड़ता है।

इस प्रकार, स्वभाव और व्यवस्था रूपी धर्म तो अन्य जीवों पर भी लागू ही है। रही बात बंधन और मुक्ति की, तो केवल मनुष्य की क्यों बात करें; अन्य जीव भी तो जन्मना स्वभाव रूपी धर्म के बंधन में बंधे ही हैं। इससे मुक्ति के बारे में जरूर कुछ दुविधाएं और उलझनें हैं। उन उलझनों से कैसे पार पाएं, इसकी खोज में भारत के भी लोग लगे और प्रकृति के अंदरूनी तरीकों को जानकर उससे शारीरिक/भौतिक तथा मानसिक स्तर पर भी मुक्ति पाई।

कुछ लोगों को लग सकता है कि स्वभाव और व्यवस्था के खिलाफ कैसे जाएं? यह तो गड़बड़ है। यह आशंका निराधार नहीं है। सच में ऐसा मुक्त आदमी, जो अपने स्वभाव एवं व्यवस्था के भी बंधन से पार पा जाए, ऐसा ही पराक्रमी होता है और पराक्रमी व्यक्ति तो खतरनाक होते ही हैं।

सौभाग्य से भारत में यह पाया गया कि ऐसे सिद्ध और फकीर राज्य और धर्म की सत्ता के लिए भले ही खतरनाक हुए, सामान्य लोगों के लिए तो इनसे अधिक शुभचिंतक एवं करुणामय ढूंढ़ना बहुत कठिन है। पहले ये लोग सिद्ध, योगी और संत माने गए। मैं आज के संत लोगों की न पुष्टि कर रहा हूं और न किसी का खंडन।

धर्म और अर्थ के संदर्भ में या उनके अधिकारक्षेत्र में व्यवस्था के नाम पर राज्य की अवधारणा का प्रवेश एक महत्त्वपूर्ण घटना है लेकिन राज्य को व्यक्तिगत या पारिवारिक संपत्ति माना जाना एक बड़ी उलझन और दुर्भाग्यपूर्ण घटना साबित हुई। इसके पहले राज्य के बंटवारे के बारे में सोचने की जरूरत ही नहीं थी।

इसी प्रकार, काम के क्षेत्र में काम दहन की घटना के बिंब का सीधा अर्थ है कि अन्य जीवों की भांति गंध, ध्वनि और स्पर्श आदि से ही कामोत्तेजित होने की जगह मनुष्य में इच्छा, संकल्प आदि से कामोत्तेजना की आदत/संस्कार विकसित हुआ –वह भी मुख्यतः मर्दों में। इससे भारतीय साधक तो बहुत इठलाने लगे कि हमने तो यह रहस्य ही जान लिया –

dke tkukfe r ey ldYikr fdy tk;lA

ukg ldYif;";kfe ru Ro u Hkfo";flA

हे काम! मैं तुम्हारा मूल जानता हूं। तुम संकल्प से पैदा होते हो। न मैं संकल्प करूंगा, न तुम पैदा होगे।

इन चारों पुरुषार्थों के क्षेत्र में अनेक प्रकार की नई–नई खोज होती गई और आज भी जारी है। इसके कारण अर्थ भी बदलते गए हैं।

चतुर्वर्गों की चर्चा अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्धक के साथ–साथ करुण भी है। आज प्रजननविहीन रतिसुख, समलैंगिकता, उत्तराधिकार आदि की उलझनें हैं तो बलात्कार तथा अनेक प्रकार के यौन अपराधों की भी समस्या कम नहीं हो रही है। राज्य की सत्ता पृथ्वी तक ही सीमित नहीं रही, अंतरिक्ष तक पहुंच गई है। परिणामतः, जंगल और उसकी स्वायत्तता को कोई मान ही नहीं रहा है। ऐसा लगता है कि कहीं न कहीं संगति के सूत्र छूट रहे हैं। एक कोशिश उन्हें ढूंढ़ने की होनी चाहिए।

मैंने उन्हें ढूंढ़ने की कोशिश की है। आशा है, आपने भी की होगी। ये सूत्र हाथ आ गए तो पता चलेगा कि धर्म का मतलब क्या है। क्या है दीर्घकालिक धर्म व्यवस्था और उसमें से आज के लिए कितने अंश कितने प्रासंगिक हैं? स्वधर्म और न्यायधर्म के बीच संतुलन का सूत्र क्या था और आज क्या हो गया?

'अर्थ'– आजीविका, संपत्ति तथा कर के आशय वाले अर्थ की एक व्यवस्थित शास्त्र परंपरा भी भारत में रही है। लेकिन इस बात को बहुत लोग जानते ही नहीं हैं। आज अर्थशास्त्र अंग्रेजी शब्द इकोनॉमिक्स का तर्जुमा बनकर रह गया है। ऐसी समझ खतरनाक है, आत्मघाती है।

मैं मगध से हूं। हमारी बड़ी निंदा है। 'मागध' एक पुरानी गाली है। संस्कृत वाली मंडली में कोई अपने को मागध नहीं कहता। मगध में जाने से कर्म का नाश होता है। ऐसा अखिल भारतीय विरोध एक देश के लिए क्यों?

ऐसे दो–चार उदाहरणों के अर्थ को समझने पर ही भारतीय बिंबों, पदावलियों, उनके अर्थ तथा विस्तार को समझा जा सकता है। यह विरोध मुख्य रूप से मगध के द्वारा स्वर्ग का विरोध करने से तो हुआ ही, चाणक्य को भी जोड़कर विरोध अन्य क्षेत्रों ने किया। कई अन्य कारण भी हैं।

चाणक्य अर्थात कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र लिखा लेकिन अर्थ पर वह कोई अकेली पुस्तक नहीं है। चाणक्य द्वारा स्थापित शास्त्रीय परंपरा हजारों साल तक प्रयोग कर नई प्रस्तुतियां देती रही, बार–बार अपने को और समस्त भारत की चेतना को झकझोरती रही। इसलिए भी चाणक्य को कुटिल, कौटिल्य, शैतानी, उत्पाती आदि पदवियां दी गईं।

'काम' के बाह्य पक्ष का नाम मैंने लिया। लेकिन भारत के लोगों ने तो कुछ सेकेंड वाला नहीं; घंटों और दिनों वाले काम/सुरति का रहस्य खोजा और उसका मजा लिया। इसमें बुराई क्या है? इससे किसका बुरा होता है? उसे किसी ने मोक्ष का प्रथम चरण कहा तो अनेक विवाद हो गए।

मेरी समझ से हमें इन चारों पुरुषार्थों के स्वरूप और उनके अंतर्संबंधों को समझना चाहिए और सत्य की श्रद्धा के साथ भारतीय संस्कृति की विविधताओं में विकसित भिन्न–भिन्न आचार शैलियों तथा उसकी सार्थकता को न केवल समझना चाहिए बल्कि उन पर अमल भी करना चाहिए। इसके लिए विवाह, प्रजनन, जाति, उत्तराधिकार आदि के क्षेत्रीय अंतरों को ध्यान में रखना जरूरी है।

केवल विविधताओं से न समाज बनता है, न चलता है। आज राष्ट्रीय एकता की चिंता तो अनके लोग करते हैं लेकिन समाज की एकता बनाकर रखने वाली व्यवस्थाओं को महत्त्व नहीं देते हैं।

तीर्थ व्यवस्था उनमें से एक है। तीर्थ व्यवस्था धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के क्षेत्र में इतना निर्णायक प्रभाव डालती है कि यह सारे क्षेत्रीय अंतरों, युद्धों, प्रतिस्पर्धाओं के बाद भी वर्ण व्यवस्था के शीर्ष समझे जाने वाले अहंकारी, कुलीन ब्राह्मणों और राजाओं तक को दूसरों के सामने झुकने, उनकी वंदना करने और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने पर विवश करती है। यह तो बस एक उदाहरण मात्र है। जोड़ने वाली ऐसी और भी कई व्यवस्थाएं हैं।

आज के समय में भी ये चारों वर्गीकरण सार्थक हैं। जरूरत है उन्हें समयानुरूप

हुए परिवर्तनों से मिलाकर समझने की। आहार, निद्रा, भय और मैथुन की प्रवृत्ति, जिज्ञासा तथा संतति की इच्छा जैसी जो बातें नहीं बदलीं, उन्हें मानना होगा। रोजगार, स्थापन, विस्थापन, रोजगार आधारित जाति व्यवस्था, राज्यसत्ता में हस्तक्षेप की प्रक्रिया, प्रजनन संबंधी गांठें, जिम्मेदारियाँ आदि जिन व्यवस्थाओं में परिवर्तन आ गया, उनके परिप्रेक्ष्य में ज्ञानी–गुणी लोगों को नई व्यवस्था प्रस्तुत करनी चाहिए। भारतीय संविधान ऐसी ही एक व्यवस्था है, भले ही वह पूरी न हो।

चार पुरुषार्थ जीवन के लक्ष्य हैं। ये पूरे होंगे या नहीं, कहना कठिन है क्योंकि जीवन की दो निश्चित सीमाएं हैं – जन्म और मृत्यु। किसकी कब मृत्यु हो जाए, कहना असंभव है।

इस पुस्तिका के संदर्भ में भी ऐसा ही हुआ। मुझे दिनांक 4 जनवरी 2016 को 'जीवन का अर्थ और सार्थक जीवन' विषय पर बोलने के लिए भाई विजय प्रताप जी ने दिल्ली बुलाया। दुर्भाग्य ऐसा कि बोलना शुरू करने के ठीक पहले पिताजी की मृत्यु का समाचार मिला।

मैं गांव में पारंपरिक समाज में पैदा हुआ सामान्य व्यक्ति हूँ। स्वाभाविक रूप से मेरी मनोदशा बदल गई। मैं भी मनुष्य ही तो हूं। फलतः चाहे–अनचाहे व्याख्यान का विषय हो गया–जीवन–मृत्यु के संबंध। उस मनोदशा में जो बोला गया और उसके पहले श्रोताओं की सुविधा के लिए जो टंकित आलेख बांटा गया था, इस पुस्तिका का दूसरा भाग उसी का समन्वित रूप है।

आखिर चार पुरुषार्थों को भी शायद विश्राम की जरूरत आ गई होगी जो प्रकृति ने, महाविराट ने, महाकाल ने, मेरे जन्मदाता की ही मृत्यु की सूचना वाला बड़ा कोष्ठक लगाकर दिया।

इस प्रकार इस पुस्तिका के दो भाग हैं। पहले भाग में विस्तार से चार पुरुषार्थों की चर्चा है। दूसरे भाग में जीवन का अर्थ और सार्थक जीवन के साथ जीवन एवं मृत्यु के भीतरी संबंधों की चर्चा है।

इस भूमिका के साथ मैं अपनी बातें आगे प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा। ■

johUn d|ekj ikBd

pkj i#"kkFk

Hkkjr में जीवन के लक्ष्य और प्रयोजन के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार वर्गों में व्यक्त बातों को स्वीकार किया गया है। विविधतावादी समाज किसी एक बात या चार बातों को ही क्यों और कैसे माने? इसलिए इन चार वर्गों को मान्यता मिली, इन्हें चतुर्वर्ग कहा गया।

तात्पर्य यह कि धर्म का कोई एक ही निश्चित रूप नहीं है। न अर्थ अर्थात आजीविका का और न ही काम का एक प्रकार है। और सबसे ध्यान देने योग्य बात है कि मुक्ति या मोक्ष भी एक ही प्रकार का नहीं होता है।

आज की चर्चा का विषय है– चार पुरुषार्थ। इस चर्चा में शामिल होने के पहले मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि इस विषय को मैं केवल शास्त्रीय दृष्टि से नहीं ले सकता। मैं जिस माहौल से आता हूं, वहां यह विषय दैनंदिन चर्चा में रहा है। मेरे घर के कुछ वरिष्ठ सदस्य आए दिन अपनी और अपने परिवार के अन्य सदस्यों की; इन्हीं मानकों–पैमानों, वर्गीकरणों और मूल्यों पर आधारित समीक्षा करते रहते थे कि कौन कितना सफल हुआ और कौन कितना विफल और मेरे घर के सभी वरिष्ठ पुरुष सदस्य परस्पर धुर विरोधी विचारों के थे।

मैं अपनी बात शुरू करूं, इसके पहले यह जरूरी है कि थोड़ा अपने परिवेश और पृष्ठभूमि के बारे में भी बता दूं, जिससे आपलोगों को मेरी बात समझने में थोड़ी सुविधा हो। मैं जहां पैदा हुआ, वहां ये चारों शब्द दैनिक चर्चा के विषय थे। परिवार के कई लोग विभिन्न विचारों के साथ जीवन जीने को दृढ़ थे और अपने असली होने के दावेदार भी।

शब्द तो ये चार ही थे लेकिन सबके अपने–अपने अर्थ और सबकी अपनी–अपनी व्याख्याएं थीं और उनका दावा यह था कि उन व्याख्याओं के साथ "मैं जीने को ही नहीं, मरने को भी तैयार हूं"। दूसरों के सामने हर एक की चुनौती थी कि तुम्हारी निष्ठा सही थी कि नहीं थी।

ऐसी परिस्थिति में अगर किसी बच्चे को कहा जाए कि मेरी ही वाली निष्ठा सही है और तुम्हें यही मानना है; और अगर नहीं मानोगे तो पिटाई भी होगी तो बच्चा बेचारा क्या करे? ऐसे में मैंने काफी मार भी खाई। मुसीबत यह कि यदि दो आदमी दो बातें कहें और सभी आदमी अपने ही हों तो मैं क्या करूं ?

इसी स्थान पर पिछली बार की मीटिंग में तारीक फतह साहब ने कहा कि एक समय पर, एक खास वक्त पर इस्लाम में अक्ल के इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी गई। तो इसी प्रकार की अपनी विभिन्न धाराओं में भी पाबंदी पता नहीं कब–कैसे लगी, पर अभी भी लगी हुई है। ऐसे में मेरी मजबूरी यह थी कि मुझे सोचने की मजबूरी थी।

/ke

मेरे स्वधर्म चिंतन की शुरुआत वहीं से होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष –ये ही पैमाने थे, यही शब्दावली थी, इन्हीं पैमानों में मुझे समझना था। तो मेरी इस मजबूरी को भी आपलोग ध्यान में रखेंगे।

दूसरी बात कि अभी जो हिंदी चल रही है, उसमें जो पारंपरिक बिंब हैं, उनकी अवधारणाएं हैं, उनको व्यक्त करने में काफी समस्याएं हैं। अंग्रेजी वाले लोगों को ही नहीं, हिंदीवालों को भी है। जैसे, आज दो शब्दों के सहारे मुझे सबकुछ कहना है। उसमें एक तो है पुरुषार्थ शब्द और दूसरा उस पुरुषार्थ शब्द को जब आगे बढ़ाते हैं तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आते हैं।

तो उसमें भी एक 'अर्थ' शब्द है लेकिन इन दोनों शब्दों के जो अर्थ हैं, वे दोनों संदर्भों में बहुत हद तक भिन्न हैं। पहला वाला जो पुरुषार्थ है –उसमें आने वाले 'अर्थ' का सामान्य आशय अंग्रेजी का मीनिंग मतलब भाव है। इस एक शब्द का जो शब्दार्थ वाला भाव है, वह वर्ड–मीनिंग वाला है। और जो दूसरा धर्म के साथ वाला अर्थ है, वह पारिभाषिक जैसा शब्द है, जिसके बारे में मैंने एक छोटा सा नोट लिखने की कोशिश की थी और उसके सहारे से ही मैं बातों को रखूंगा। तो वहां जाकर वह 'अर्थ' शब्द एक तकनीकी शब्द जैसा हो जाता है।

यह अर्थ शब्द और पहले वाले अर्थ शब्द में यदि दुविधाएं, ओवरलैपिंग या कुछ और होने लगे तो क्षमा करेंगे। वैसे मैं कोशिश करूंगा कि दोनों के संदर्भ का ख्याल रखूं। मूल विषय पर आने से पहले अपनी परंपरा और समझने–समझाने की शैली पर भी थोड़ा गौर कर लें, तो अच्छा रहे।

अब, जो अपना भारत देश है और इतने सालों से जो शब्दों के प्रयोग हुए हैं, उनमें इतनी विविधताएं हैं; इसके बावजूद ऐसा नहीं है कि उसमें कोई आपस का रिश्ता नहीं है। जिस भी प्रकार के राष्ट्रवाद की बात होती है, वैसा राष्ट्र बनाने को लोगों ने सोचा या नहीं सोचा या कब सोचा, यह तो मैं ठीक से नहीं कह सकता हूं क्योंकि मैं इतिहास का विद्यार्थी नहीं हूं, लेकिन समाज बनाने की चिंता बहुत दिनों से है। और परंपरा में उसकी कुछ शर्तें रखी गई हैं कि समाज बनाने वाले को कैसे समझें। कैसे मानें कि कौन व्यक्ति समाज को बनाने और संभालने वाला है और कौन समाज को बिगाड़ने वाला है? आखिर लोगों को पहचानेंगे कैसे?

इसकी कुछ शर्तें हैं। इसकी एक शर्त यह है कि उसी की बात पर हम भरोसा करें जो अपनी पहचान को ज्ञान की धारा में समाप्त कर देता हो। इसलिए बहुत सारी अच्छी किताबें ऐसी मानी गई हैं, जिनका कोई लेखक नहीं होता और एक हेडिंग चलती गई है कि साहब एक आदमी ने कहा, एक आदमी ने सवाल पूछा और एक ने जवाब दिया।

यह वार्ता की शैली है। सभी जगह टाइटल, हेडिंग वही रहती है। बौद्ध परंपरा

में भी और वैदिक परंपरा में भी। कहीं—कहीं 10—20 वक्ता हैं या दो—तीन काउंसिल हैं। बौद्ध परंपरा में दो—तीन काउंसिलें हो गईं लेकिन दो—तीन काउंसिलें ही हुईं या दो—तीन संगीतियां ही हुईं, ऐसी बात नहीं है। हर 15 दिन पर जहां बैठक अनिवार्य हो, वहां सिलसिला तो लगातार जारी रहना है। बातचीत का सिलसिला, जोड़ने—घटाने का सिलसिला चल रहा है। नई बात भी डालते हैं तो उसी निष्ठा में डालते हैं।

आज इतिहास का जो सिलसिला है, उस तरह से उसको समझने में भारी असुविधा होती है लेकिन समाज जोड़ने वाले को इतिहास की चिंता नहीं है। उसकी चिंता समाज की है इसलिए वह अपनी पहचान तक को इसमें डुबोने को तैयार है और इसी चलते वह इस ज्ञान परंपरा में, परंपरागत ज्ञान में कुछ जोड़ने का हकदार भी होगा।

इसीलिए पूरी तंत्र परंपरा की जितनी किताबें होती हैं, उनमें लिखा होता है कि पार्वती जी ने पूछा, भैरवी ने पूछा और भैरव ने कहा। बस ये दो ही भूमिकाएं हैं— बाकी जो कहना हो, कहें। बहुत सारे पूर्वाग्रह हैं या जो विचारों के प्रति निष्ठाएं हैं, उनमें पक्षबद्ध ता होती है लेकिन व्यक्ति, परिवार, गुण, गोत्र की पहचान और हमको यश मिलेगा, पैसा मिलेगा, इन सब चीजों को, कम से कम इतना तो डुबोकर ही उसमें शामिल होना पड़ता है। यह ऐसी ज्ञान परंपरा को आगे बढ़ाने की शैली है।

अब मैं आता हूं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर। धर्म शब्द का जो अर्थ है और इसमें जो परिभाषाएं दी जाती हैं, जैसे आग है, तो जलाना आग का स्वभाव है, यह उसका धर्म है — मतलब कि आग का धर्म है जलाना। पृथ्वी का धर्म है कि वह वजन सहती है, धारण करती है।

तो धर्म शब्द का ऐसे स्वभाव के अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। यह हमारा धर्म है, यह कर्तव्य है, इस अर्थ में भी प्रयोग हुआ है। और जो व्यवस्था वाला अर्थ है, उस अर्थ में भी धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। अब यह तो बहुत ही विचित्र सा लगता है कि भई, यह तो मामला उलझ गया। एक अर्थ तो स्वभाव है, धर्म शब्द का दूसरा अर्थ कर्तव्य है और फिर तीसरा यह जो व्यवस्था अर्थ है। अभी आधुनिक समय में जो बहस होती है, वह बहस व्यवस्था और कर्तव्य तक आती है। धर्म में स्वभाव को धर्म कहते हैं, यह सच तो अब कोई सुनने को तैयार नहीं है।

लेकिन जो पुराने परंपरागत शास्त्र हैं, वे कहते हैं कि हमारे लिए यह जो धर्म है, हमारा स्वभाव है, यह हमारे लिए कीमती है क्योंकि इसी आधार पर हम कह पाए कि आजाद होना है —जीव मात्र को मुक्ति का अधिकार है। मनुष्य को ही नहीं, सारे जीव मात्र को मुक्ति का अधिकार है। और यह इसलिए कि यह मेरा स्वभाव है, मेरा स्वधर्म है, कि हम आजाद होकर रहेंगे। तो यह बहस वहां तक जाती है।

अगर हम धर्म का यह स्वभाव वाला अर्थ न लें तो व्यवस्था तो वह भी है और व्यवस्था तो यह भी है। इसमें बुनियादी फर्क क्या पड़ता है? राजा तो पहले भी थे। गुलामी भी थी। राजा पहले भी थे — वे चाहे हिंदू रहें या फिर मुसलमान रहें, बौद्ध हों या जैन रहें

या फिर एक परंपरा वाले रहें या फिर दूसरी परंपरा वाले रहें, शैव रहें या फिर वैष्णव रहें। अगर गुलामी वाजिब है तो गुलाम रहिए लेकिन जो स्वभाव और जो स्वधर्म वाला अर्थ है, तो उसमें हमें मुक्ति का अधिकार है।

जो मुक्ति या जो मोक्ष है, उसकी व्यवस्था यहां तक है कि साहब, हमको हर चीज से मुक्ति चाहिए। मुक्ति का मतलब समाज, समाज की व्यवस्था से मुक्ति के मामले तक गया। एक चीज मानी गई कि यह प्रकृति जो है, वह शरीर का मूल घटक है। जब तक यह शरीर है, उस प्रकृति से मुक्ति का मामला नहीं है और जितने प्रकार के शरीर हैं–स्थूल, सूक्ष्म आदि वे प्रकृति के अंतर्गत हैं। प्रकृति की अगर वह सूक्ष्म व्यवस्था है तो मुक्ति का मतलब नहीं है। मतलब यह है कि समानाधिकरण्य सिद्धांत से जो कहा जाता है, वही मुक्ति है। एक मतलब यह है कि आप समुद्र में विलीन हो गए, आपका अस्तित्व नहीं है। अब उसे विलीनता मानिए या फिर मुक्ति मानिए, बात बराबर है।

इसे मुक्ति मान लीजिए या फिर समाप्ति मान लीजिए। दोनों ही मुक्ति के रूप हैं। और दूसरे जो सिलसिले हैं, जो पहले की छोटी–छोटी बहुत सारी मुक्तियां हैं, मसलन आप समझते हैं कि समानाधिकरण्य या फिर समवेग का जो सिद्धांत है मतलब कि एक ही रफ्तार से अगर दो चीजें गतिशील हैं, जो उपमा दी जाती है कि प्लेटफार्म भी और ट्रेन भी एक ही स्पीड से चले, तो दोनों में कोई बंधन नहीं बचता है। आप आसानी से इधर से उधर जा सकते हैं और अगर चिपका हुआ हो तो पता ही न चले कि ट्रेन पर हैं या फिर प्लेटफार्म पर हैं।

देश और काल से संगति, समन्वय, सहमति और समानाधिकरण्य के सिद्धांत वाली जो मुक्ति है, उसके लिए छोटे–छोटे, दैनंदिन जीवन में प्रयोग भी बनाए गए। तो यह मुक्ति का फ्रेम है।

मैंने कुछ दूसरे ढंग से लिखा था। लेकिन अभी आपने जैसी चर्चा शुरू की, तो मेरा जो पुराना पर्चा था और जो मेरा आज का नोट था, वह मैंने नीचे रख दिया है। मुझे लगा कि शायद आपलोगों को यूं ही बातें सुनने में अच्छा लगेगा और मुझे भी कहने में अच्छा लगेगा।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे यहां हर चीज में देश और काल का स्मरण करते हैं। अभी सबसे ज्यादा धर्म पर जो 10–20 विवादास्पद आरोप खासकर हिंदू धर्म पर लगते हैं, जबकि बाकी दुकानें भी उसी हिसाब से चलती हैं। वह आरोप यह है कि साहब, आपलोग भूत–प्रेत मानते हैं और इन सभी दकियानूसी बातों में उलझे रहते हैं। लेकिन हमारे अभी के और जो बाकी धर्म या मजहब जो कहना चाहें, जो चल रहे हैं, वहां भी भूत–प्रेत ने किसी को छोड़ा नहीं है। और उसका बिजनेस आज भी जारी है। उसमें कोई मंदी नहीं है।

अगर हम परंपरागत बिंबों में देखें, मैं तो कहता हूं कि आजकल हिंदू मुसलमान और ईसाई की तरह सोचते हैं और हमारे मुसलमान भाई हिंदू की तरह जीते हैं। मुश्किल यह है कि ठीक से दूसरे को समझने को लोग तैयार नहीं हैं। दहेज वे लेते हैं। कितने लोग

मेहर देते हैं? मैंने मुकदमे लड़े हैं –हिंदू लड़कियों के लिए भी और मुसलमान लड़कियों के पक्ष में भी लड़े हैं। इसलिए मुझे कोई कन्फ्यूजन नहीं है।

बात रही छुआछूत की। साहब! मैं शागिर्द रहा हूं बीएचयू में, बड़ा प्यार मिला है उर्दू की मशहूर विदुषी दीदी कमर जहां का। उन्होंने कहा कि अरे, तुम कहां छुआछूत के चक्कर में हो? मेरी मां भी किसी का छुआ हुआ खाना न खाती है और न पानी पीती है। यह हाल है। यह तो मेरा घर है और तुमलोगों का हाल यह है कि तुमलोग हॉस्टल से आते हो कि बिजली–पानी बंद है और सीधे किचन तक पहुंच जाते हो। यह अलाउड थोड़े ही है? वे लखनऊ की हैं। इतना प्रेम–वात्सल्य मिला ... और जो मैंने जीकर देखा है।

मेरे गांव में भी काफी संख्या में मुसलमान हैं। मेरा गांव भी नमूने का गांव है। एक चैलेंज है बहुत सारी बातों को समझने के लिए। बाकी जगह के मुसलमान आबादी से दूर जाकर बस जाते हैं। मेरा गांव ऐसा है, मुझे फख्र है कि मुसलमानों का जो टोला था, जो गांव से बाहर था, वह आकर गांव में फिर से बस गया और जो गांव के बाहर मस्जिद थी, वह गांव के बीच में बन रही है। यह कमाल मेरे गांव में है। और भी बहुत सारे कमाल हैं।

तो यह जो सिलसिला है स्वधर्म वाला, यह बहस, वहां तक यह बात जाती है। तो यह धर्म वाला ही ज्यादा मामला है। उसमें प्रचलित शास्त्रीय पदावली है, जो टर्मिनोलॉजी है, बहुत सी चीजें हैं, जो कॉमन हैं, सभी जगह मान्य हैं। लेकिन अब उसपर चर्चा नहीं होती है क्योंकि वह ब्रांडेड नहीं है। वे बेसिक साइंस के फार्मूले की तरह हैं और मुफ्त में उपलब्ध हैं। उनके लिए कोई समस्या नहीं है।

तो उस फ्रेम में देखें तो हर आदमी को प्रेत पकड़े हुए है। ऐसा शायद कोई आदमी नहीं मिलेगा जिसे प्रेत नहीं पकड़े। तो अगर मैं उस फार्मूले के हिसाब से सोचूं तो फार्मूला जानने के बाद आपलोगों में से कोई भी दावा नहीं करेंगे कि आपको प्रेत नहीं पकड़े हुए है। सबको प्रेत पकड़े हुए है। यह कैसे हो सकता है? लेकिन यदि मैं अर्थ स्पष्ट न करूं तो बहुत ही भयानक बात होगी कि आप सभी को प्रेत पकड़े हुए है और किसी न किसी के पास इससे जान छुड़ाने आपको जाना होगा।

प्रेत पकड़ने का मतलब क्या है? मतलब यह कि जो आदमी जहां है, वह होश में न हो। टैक्नीकली प्रेत पकड़ने का अर्थ होता है कि जो आदमी होश में न हो उसको प्रेत पकड़े हुए है। तो यह मीनिंग है।

तो हम नाप–तौल करके देख लें कि होश में लोग कितने घंटे रहते हैं और ऐसे कितने आदमी हैं जो दिन भर होश में रहते हैं। यदि उनके सोने वाले टाइम को छोड़ दें, तो हम जब तक जगे रहते हैं तब तक होश में रहते हैं। लेकिन होश न भी खोएं, तब भी प्रेत पकड़े ही हुए है।

आप कहें कि उसे क्लेरीफाई करो। तो भाई, क्लेरीफाइड बात यह है कि जो जहां पर है, अगर उसका निर्णय टाइम और स्पेस के होश का नहीं है, अगर उसे देश और काल

की सजगता नहीं है, तो यह पक्की पहचान है कि तब तो उसे प्रेत पकड़े ही हुए है। रोना यह है कि हमारे देश और समाज को प्रेत पकड़े ही हुए है।

तो उपाय क्या है? एक उपाय ज्युडिशियरी ने तय किया है। जो ज्यूडिशियरी में चल रहा है, वही हमारे पूजा–पाठ में चल रहा है। अगर आपको अपने टाइम और स्पेस की अवेयरनेस नहीं है, तब तो आपको प्रेत पकड़े ही हुए है।

लेकिन ऐसी बुनियादी बातों को कहने के लिये कुछ बहाना चाहिए। तो बहानों से कहने के लिए एक मेरी किताब है आयुर्वेद की। 'आयुर्वेद के ज्वलंत प्रश्न' क्योंकि आयुर्वेद एक ऐसा शास्त्र है जो व्यावहारिक रूप से उपयोगी है। तो उस बहाने से मैंने बहुत सारी बातें लिखी हैं। यह चिकित्सा की किताब नहीं है, यह बुनियादी बहस की किताब है, उसके सिद्धांतों पर।

हां, तो उपाय क्या करना है? उपाय यह करना है कि जैसे हर काम को करने से पहले यह शपथ खाते हैं कि हां, मैं घोषणा करता हूं या मैं प्रतिज्ञा करता हूं और यह मैं होशो–हवास में कर रहा हूं, बदहवासी में मैंने यह बात नहीं कही है, होशो–हवास में मैं यह बात कह रहा हूं। और हर प्रतिज्ञा के पहले हम यह लाइन जोड़ते हैं। हमें जोड़ना पड़ता है – इस जगह पर इतने बजकर इतने मिनट, इस तारीख, इस साल को मैं यह घोषणा करता हूं –और फिर दुहराकर उसकी संपुष्टि में हस्ताक्षर करना पड़ता है।

यहां धर्म में कहा गया कि ऐसे काम नहीं चलेगा। टाइम का जो सबसे बड़ा, लार्जेस्ट फ्रेम है, वहां से शुरू करो। तो देखो कि तुम होश में हो कि नहीं हो?

हम जांच कर लेते हैं कि टाइम का जो लार्जेस्ट फ्रेम हैं, समय का जो पैमाना है, जिस परंपरा में आप हैं, उसका आपको पता है कि नहीं है, आपके स्मरण में वह है कि नहीं हैं, और जो सबसे छोटा वाला पैमाना है, वह भी आपके स्मरण में है कि नहीं है। स्पेस का जो सबसे छोटा पैमाना है, वहां से शुरू करके बताओ, सबसे छोटे वाले पैमाने तक आओ।... आओ ... और जांच करते हैं कि आपको पता है कि नहीं है, और आपको याद है कि नहीं है। और नहीं है, तो कोई काम शुरू करने से पहले इसे याद कर लो। वरना आपको प्रेत ने पकड़ा हुआ है। तब तो आप होश में नहीं हो।

इसका मतलब कि आपको तो प्रेत ने पकड़ा हुआ है, आप तो बेहोश हो। और बेहोश आदमी का दिमाग इधर–उधर घूमता रहता है। वह सही बात पर टिकता नहीं है। जिसका दिमाग सही बात पर नहीं टिकता है, फिर उसके निर्णय या आश्वासन पर कैसे भरोसा करें?

यदि उसका सही बात पर दिमाग टिकने लग जाए और टैक्नीकली अगर समय और देश के बारे में उससे पूछा जाए और अचानक ही कोई पूछ दिया जाए ... जैसे इस हॉल में तो बताना मुश्किल है लेकिन अगर बाहर मैदान में खुले में हों और किसी से पूछा जाए कि अभी क्या समय,क्या वक्त हो रहा है। और उसने यूं ही किसी अंदाजे से बता दिया तो इसका मतलब कि उसे प्रेत नहीं चिपटा है।

कई लोग किसी बेहोशी में लगे हैं काम पर और उन्हें यह भी नहीं पता कि दोपहर है कि शाम। तो भूख तो लगती है अपने हिसाब से। अब कोई पूछे कि आज आपने प्याज खाया? तो पता ही नहीं, ... आप कहेंगे कि पता नहीं, मुझे तो यही नहीं पता कि सुबह से खाया या नहीं खाया। मैं तो काम में भूल गया था। तो इस बेहोशी–बदहवासी में, आधुनिकता के दौर में हमलोग जी रहे हैं, जिसे टैक्नीकली कहा जाए तो प्रेत पकड़ा हुआ है।

प्रेत होता है कि नहीं होता है, वे बाकी ... परिभाषाएं अनेक हैं क्योंकि प्रेतों के प्रकार अनेक हैं। सबके प्रेतों के डिजाइन अलग हैं। किसी का काला है तो किसी का गोरा है। किसी का कुछ है, तो किसी का कुछ लेकिन बदहवासी–बेहोशी वाली बात लगभग सभी जगह है।

लिहाजा कीमती बात मेरी समझ से यह है कि प्रेत की परिभाषा समझ ली जाय। और इस प्रेत बाधा से कम से कम इस टर्मिनोलॉजी वाले हिंदू समाज की पहचान के साथ जो हैं, वे तो मुक्त हो ही लें। और ये टेक्नोलॉजी बहुत टेढ़ी नहीं है। इस पर कोई प्रोपर्टी राइट भी नहीं है। ऊपर से कंपल्शन यह है कि एक भी पूजा–पाठ, कोई भी शादी–विवाह आप इस एक्सरसाइज के किए बगैर शुरू नहीं कर सकते।

यह अभी भी प्रचलन में है। बस जो होता है, उसमें इतना ही फर्क है कि वे जल्दी में बड़ा वाला, छोटा वाला, छोटा वाला यूं बोलते चले जाते हैं और ब्रह्मांडीय काल से लेकर छोटे मानवीय काल तक, वे इस पर गौर नहीं फरमाते हैं। लिस्ट है, पूरी लिखी हुई। वे उसे बस पढ़ जाते हैं।

तो अगला अगर सवाल पूछता है कि भई! यह लिस्ट क्यों पढ़ रहे हो? यह बकवास का कर्मकांड क्यों कर रहे हो? अगर इस बात को समझ लें तो इसे हिंदू, मुसलमान, ईसाई से कोई लेना–देना नहीं है, उनका जो भी फ्रेम हो।

मान लीजिए टाइम वाले में आप कामन फैक्टर और कामन फ्रेम भिड़ा भी लेंगे। यह स्पेस वाला कैसे भिड़ाएंगे, साहब! हम पाकिस्तान में हैं, हिंदुस्तान में हैं या फिर दिल्ली में हैं, हम गया में हैं, तो आपको उस समय जब ओथ लेंगे तो आपको बताना होगा कि हम होश में हैं। तो यदि आप शपथ लेंगे तो आपको बताना होगा कि आप कहां पर हैं, समय कितना बजा है, और आप किस जगह पर हैं। ... तो आपको बताना होगा कि इतने मिनिट और सेकेंड में मैंने यह प्रतिज्ञा की है। यदि आप होश में हैं तो यह सब बताना होगा। तब यह उम्मीद की जाती है कि आप बहुत सारी गलतियां नहीं करेंगे, न आप किसी से हिप्नोटाइज़्ड होंगे।

फिर कोई सवाल ही नहीं होता कि आपको कोई दूसरा व्यक्ति बेवकूफ बना सके और आपको हिप्नोटाइज कर सके आसानी से। तभी आप होश में हैं। और यदि आप नहीं हैं होश में, तो आप पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। तो आपको तो प्रेत पकड़े हुए है। फिर जो प्रेत का कमांडर होगा, वह आपसे खेल खेलेगा। वह आपसे मिसाइल बनवाएगा कि मानव बॉम्ब बनवाएगा, कमाल तो उसका चलेगा क्योंकि आप तो होश में हैं ही नहीं। आपको तो प्रेत पकड़े हुए है।

अतः यह जो होश है, हमारे यहां की बुनियादी कीमती बात है। यह धर्म है, स्वभाव है और होश में रहना हमारा हक है। हमको कोई बेहोश नहीं कर सकता। धर्म के चाहे जितने मॉडल हों, हमारा स्वभाव हमारा धर्म है। जीव मात्र को मुक्ति का अधिकार है। और साहब, मुक्ति मुफ्त में मिलती नहीं।

यह मुक्ति क्या है? हम यदि सभी बंधनों से, दुखों से मुक्त होंगे, तो आप सुख से मुक्त होंगे कि दुख से? मुक्त होना है तो सुख और दुख, दोनों से मुक्त होना होगा। क्या पता, अभी आपको यह बात पसंद है और थोड़ी ही देर में आपकी पसंद बदल जाए। तब क्या होगा? सुख–दुख तो बदलता रहता है। अगला क्या करे?

तो अगर पूरा का पूरा मुक्त होना है तो दोनों से मुक्त होना होगा। नहीं तो कम से कम यह बात तय कर लें कि आपकी जो इच्छाएं हैं, जो डिजायर हैं, वे बदलेंगी नहीं।

और सच तो यह है कि इस पर हमारा कोई कंट्रॉल ही नहीं है कि वे बदलेंगी या नहीं। बहुत लोग इस प्रैक्टिस में हैं कि हम जिंदगी भर एक ही चाहत रखेंगे। एक ही तरह का खाना खाएंगे, एक ही रंग का कपड़ा पहनेंगे।

किंतु ऐसा हुआ नहीं। अक्सर हुआ यह कि जो इस फार्मूला को जबरन लागू करते हैं, खुद रंगीन कपड़े पहनते हैं, बड़े रंगीन मिजाज होते हैं और दूसरों को कहते हैं कि सिंगल रंग में रहना है, वे जबरन कहते हैं कि यह रंगीनियत जो है, रंगीन मिजाजी है, वह तो केवल मेरे लिए है। आपको तो प्रेत पकड़ा हुआ है इसलिए आप जो कपड़े पहनेंगे वह तो मैं बताऊंगा न? क्योंकि आपको तो रहने का शऊर ही नहीं है, आपको तो अक्ल ही नहीं है। आप केवल मेरा बताया एक रंग वाला ही कपड़ा पहनो।

लेकिन बात कपड़े के आगे सोच और पूरी जीवन शैली तक जाती है। हमारे यहां भी बहुत सारे लोग शुरू से इस मिजाज के रहे कि आपका जो स्वधर्म है – सोचने का, मुक्ति का, ज्ञान का – वह हक छीन लिया जाए। यह भी ट्रेंड रहा है और उसके बहुत से हथकंडे रहे हैं, बहुत सारी कोशिशें रही हैं। वहीं, दूसरी धारा के लोग मानते हैं कि अक्ल का इस्तेमाल करना हमारा बुनियादी हक है और हमें अज्ञान के बंधन से मुक्ति पाना है। और इसके लिए जो कीमत चुकानी है, वह चुकाएंगे।

धर्म में, वेदांत में भी व्यक्तिवाद गया है। यह जो धर्म वाला फ्रेम है, इसको अगर हम क्लीयर नहीं करेंगे तो यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वाला फ्रेम क्लीयर नहीं होगा क्योंकि व्यवस्था उसमें कॉमन है। धर्म की एक अर्थ व्यवस्था है जोकि कॉमन है। अगर लोगों का यह कन्सेप्ट क्लीयर नहीं होगा तो बाकी कन्सेप्ट भी क्लीयर नहीं होगा कि पुराने लोगों ने, हिंदुस्तान के लोगों ने, आम लोगों ने कैसे सोचा।

इसमें मुख्य रूप से दो धाराएं हैं। यह जो सिलसिला है, यह व्यवस्था वाला है। इसमें दो कन्सेप्ट हैं– एक जो कन्सेप्ट आया, वह स्वर्ग वाला है। वह लगभग कॉमन है। सुना है, थोड़ा–थोड़ा वर्णन अलग है। मैं उसका जानकार नहीं हूं। क्या वर्णन है, मुझे उसके बारे में नहीं मालूम है।

मैं पानी का काम करता हूं। हमारे कई मुसलमान बड़े भाई हैं, बहन हैं। उनसे पूछा कि साहब जन्नत में ऐसी कौन सी खास बात है, जो मेरे लायक है। आपके काम के लायक जो होगी सो होगी। तो उन्होंने कहा कि तुम्हारे काम के लायक दो चीजें हैं– एक तो बाग और दूसरे फव्वारे, जो तुम्हें पसंद हैं। बिना बाग के जन्नत क्या? और वहां पानी की अच्छी–खासी व्यवस्था होनी चाहिए। बिना पानी के फव्वारे चलेंगे कैसे?

तो मेरी पसंद की दो चीजें वहां हैं। और बाकी चीजें भी होंगी ही। तो जन्नत तो है, साहब।... और हमारे यहां भी स्वर्ग है। हमने कहा कि बाग हो न हो, हम एक पेड़ से भी काम चला लेंगे। कम से कम एक गाय और एक पेड़ चाहिए। एक गाय इसलिए कि हम जो चाहें वह काम कर लें और पेड़ इसलिए कि हम जो चाहें वह लाकर दे दे। अब फिलहाल इन प्रतीकों और बिंबों की बात में मैं नहीं फंसूंगा।

कुछ लोगों ने कहा कि फिर यह जो अपना मन है, इसका तो कुछ पता नहीं कि कब किस पर आ जाए। तो एक यह बात कि यदि आप प्रैक्टिस में आ रहे हैं, तो पहले आप अपनी इच्छाओं को पहचान लें। नहीं तो ... कहा कि आप पेड़ के नीचे गए और आपकी तबीयत यह हुई कि साहब, बड़ी अच्छी जगह है। हवा भी अच्छी चल रही है। खुशबू भी आ रही है। खाने–पीने के लिए बाग में फल तो हैं ही। लजीज खाने की चीजें भी, और भी जो आपने चाहा वह सामने आ गया। और इसके साथ ही आपने चाहा तो साथ में एक बड़ा अच्छा सा पलंग भी मिल जाए। चाहा तो आ गया। और अचानक ही आपके मन में अचानक ख्याल आ जाए कि अब सोया जाए। नींद भी अच्छी ही आनी चाहिए। और फिर ख्याल आया कि अगर शेर आ गया तो? तो शेर आ गया। उसके बाद यह मन में ख्याल आया कि अगर शेर खा जाए तो? तो शेर ने खा लिया। स्वर्ग या जन्नत की खासियत यही है कि वहां तमन्नाएं पूरी होती हैं।

आपके 'चाहने के सवाल' के लिए ये नमूने रखे गए कि यदि आपके चाहने से खाना आ सकता है, सुख–सुविधा के सारे असबाब आ सकते हैं तो बहनें माफ करें, पुरुष प्रधान व्यवस्था ने औरतों को उसी नज़रिए से देखा, तो सुख के साधन के रूप में मनपसंद खूबसूरत औरत भी आ सकती है। तो शेर भी आएगा और आपने सोचा तो शेर आकर खा भी जाएगा।

तो यार, ऐसी जन्नत में जाने से पहले, उस पेड़ के नीचे जाने से पहले होश में आ जा। अक्ल ठिकाने रख ले कि कोई ऐसी चाहत–मरने की या बाघ की चाहत न पाल लेना और सोचना नहीं कि बाघ आकर खा लेगा। तो यह हाल जन्नत का है। मुझे विवरण से मतलब नहीं है।

इससे अलग, दूसरे ने कहा कि मुझे जन्नत से कोई मतलब नहीं है। जन्नत जाए जहन्नुम में। दूसरे ने कहा कि भाई जन्नत में तो गुलामी है। जन्नत शब्द मैं वापिस ले रहा हूं। हमारा जो स्वर्ग है, उसमें तो गुलामी रहती है। जन्नत का मुझे ठीक से पता नहीं। माफ करें, गलतियां हो जाएंगी और अगर आप टोक देंगे तो मैं आभार मानते हुए वापिस ले लूंगा।

हां, तो हमारा वाला जो स्वर्ग है, उसमें गुलामी है। इंद्र को कोई अप्सरा पसंद है तो ठीक है। नहीं तो, जाओ इधर–उधर तप करने वाले आदमी लोगों के बारे में संपर्क करो। तो इंद्र जो कहेगा, वह मानना पड़ेगा। पूरी राजशाही है।

साधु या बाकी जो राजा या पढ़े–लिखे लोग थे, जो बड़ी–बड़ी औकात वाले थे, गफलत में वे भी सब छोड़कर जन्नत गए थे। वे कोई गुलामी के लिए तो नहीं गए थे? लेकिन फिर भी फंस गए वहां और कहा कि नहीं, हमें दुबारा स्वर्ग नहीं जाना है।

एक बड़ी धारा है जो यह कहती है कि उसे स्वर्ग नहीं जाना है। संयोग से मैं उस इलाके से आता हूं, जहां ... जो लोग स्वर्ग जाने वाले हैं, उनके लिए हमारे यहां जगह नहीं है। वैसे ही गया बिहार में हम जिंदा लोगों का खयाल नहीं रखते हैं। हमारा स्पेशलाइजेशन अलग है। हमारे यहां मुर्दा लोगों का ख्याल रखा जाता है। मैं गया से हूं और मेरे ख्याल से यह बात सभी की समझ में आ गई होगी। हम तो मरे हुए लोगों का ख्याल रखते हैं।

हम मगध के हैं। हमारी जो सीमा है, जो कल्चरल बाउंड्री है, वह एक नदी है। उसका नाम है कर्मनाशा। आपने उसे क्रॉस किया तो आपके पुण्य और पाप, दोनों ही नष्ट हो जाएंगे। अकेला तो नष्ट होगा नहीं। सिर्फ पाप ही तो नष्ट होगा नहीं। तो फिर न तो आप जहन्नुम जा सकेंगे, ना ही जन्नत जा सकेंगे।

तो हिन्दुस्तान का जो धर्म है और परंपरागत मोक्ष की जो व्यवस्था है, उसे आप केवल इस स्वर्ग और नरक वाले फॉर्मेट में नहीं समझ सकते। तो वहाँ क्यों जाएंगे? इसलिए बहुत सारे लोग मगध क्षेत्र में जाना नहीं चाहते।

एक कथा है कि एक ऋषि थे। इंद्र के पास गए थे। इंद्र ने उन्हें पालकी ढोने में लगा दिया। कहा कि आप हमारी पालकी उठाओ। उस ऋषि ने कहा कि मैं तो गलती से मिलने के लिए आया था; यह तो सजा हो गई।

नहुष की कथा है। एक ऋषि हैं इंद्र के यहां। ऋषि का नाम मैं भूल रहा हूं, जब याद आएगा तो बताऊंगा। तो उन्होंने कहा कि अब तो पालकी उठानी पड़ेगी। ऋषि ने कहा कि यह तो भारी मुसीबत है। और उसके बाद उस पालकी में जो बैठा है, वह तो मस्ती में है। उसने कहा कि तेजी से चलो। उसने कहा कि तू तो सांप की तरह चल रहा है। तुझे तो पालकी उठानी आती ही नहीं। और उसके बाद इंद्र को उस ऋषि ने शाप दे दिया कि अगली बार तू सर्प योनि में पैदा होगा। क्योंकि इंद्र की कोई पर्मानेंट पोस्टिंग नहीं है।

वैसे पोस्ट पर्मानेंट है, व्यक्ति नहीं। लेकिन वहां भी राजनीति यही है कि यह पोस्ट मेरा है, यह कुर्सी मेरी है और हमेशा मेरे ही पास रहे, किसी और के पास न जाय। हमलोग इस चीज को, पॉलिटिक्स को हजारों सालों से एक्सेप्ट किए हुए हैं कि अगर पर्मानेंट कुर्सी होगी तो लालच होगा ही। तो कुर्सी ही पर्मनेंट न रखो। लेकिन यदि कुर्सी पर्मानेंट होगी तो उसमें कोई न कोई पर्मानेंट बैठने का जुगाड़ करेगा ही करेगा, वह मानेगा नहीं।

तब कई लोग कहते हैं कि बढ़िया है कि स्वर्ग जाओ ही नहीं। तो स्वर्ग जाएंगे ही नहीं। इसलिए हमारा जो इलाका है, उस इलाके को पूरे हिंदुस्तान के लोग गालियां देते हैं। बहुत गंदी जगह है, बकवास है।

मजबूरी में जो उनके पुराने पुरखे मर गए, वह बहुत दिन स्वर्ग या नरक में रह लिए, तो उन्हें नरक से स्वर्ग में पहुंचाने की कोशिश करने हमारे यहां लोग आ जाते हैं वहां पर। लेकिन अपने लिए आने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। यदि जाएंगे वहां जहां नहीं जाना है, तो अब तो प्रायश्चित्त करना पड़ेगा क्योंकि अब पाप के साथ–साथ सारा पुण्य भी गया।

तो यह जो मुक्ति का फ्रेम है, जो हमारी जगह पर है, वह एक्सपेरीमेंट वाला है। वहां किसी भी फामूर्ले पर कोड नहीं बनता। हमलोग कोड नहीं बनाते। हम फार्मूला बनाते हैं और कोड तोड़ देते हैं। हजारों साल का इतिहास यह है कि कोड ऑफ कंडक्ट, जिसे संहिता कहते हैं – जैसे पीनल कोड, इंडियन कोड ... सिविल कोड हुआ – तो ऐसे बड़े शास्त्र, हमलोग नहीं लिखते हैं। ऐसा कोई आदमी नहीं मिलेगा, जो ऐसा शास्त्र लिखे। हम मूल सिद्धांत रचते हैं और पुराने को ध्वस्त कर देते हैं।

हां, हमारे विरोधी कहते हैं कि ये सब उजड्ड लंपट हैं, इनका दिमाग ठीक नहीं रहता, इनमें कोई स्थिरता हजार–दो हजार साल की नहीं है। इसलिए बुद्ध भी चले जाते हैं, महावीर भी चले जाते हैं और नए जमाने में कोई पारंपरिक बिंबों में काम करता है, जैसे बिनोबा जी, तो वे भी चले जाते हैं, कुछ नया करने, खोजने या पाने के लिए।

हमारे यहां दो शर्तें हैं –या तो यश दे जाइए या शरीर दे जाइए। अब यह तो बिंब है। या तो यश दे जाइए, या फिर आप यहां आए ही क्यों थे? यश–अपयश का क्या मायने मतलब है? दो में से एक तो देना पड़ेगा, नहीं तो हम छीन लेंगे, आपसे।

विनोबा जी गए थे बेचारे। चूंकि इसमें (इस गोष्ठी में) गांधी–विनोबा के भी काफी लोग हैं श्रद्धा रखने वाले इसलिए कह रहा हूं। वे गए थे कि हम वहां सिद्धि प्राप्त करेंगे लेकिन वहां मरे नहीं। मरे वे जाकर महाराष्ट्र में। तो साहब! ग्रामदान–भूमिदान सफल हुआ कि सत्यानाश हुआ?

बात एक ही है। चीफ मिनिस्टर कहता है कि आपको दान मांगने की जरूरत नहीं है। मैं आपके बदले ... अगर मैं सही याद कर रहा हूं, तो यही है कि मैं आपके बदले में व्यवस्था कर रहा हूं। अभी तक भूदान पूरा हुआ नहीं, हमारे यहां। कितनी कमेटियां बनती गईं। आज भी कमेटियां हैं। काम ही नहीं हुआ।

तो ये जो बातें हैं, गहरे बिंब हैं, उनका बहुत दूर तक विस्तार है। यदि हम उन पैमानों में ... जैसा हमारा समाज है, हमारा जो पैमाना है, हमारी जो पदावली है, जब तक हम उस पैमाने में नहीं समझेंगे, उसकी उन बातों को नहीं समझ सकते।

हमने अपनी सुविधा के लिए शब्दों का जो अर्थ ले लिया कि धर्म मतलब कर्तव्य

होता है, यही शास्त्र है। यह एक अति आदर्शवाद है। ऐसा वस्तुतः नहीं है। फिर, एक बात मैं धर्म के बारे में कहना चाहता हूं। दो बातें कहनी जरूरी हैं। एक तो यह कि हम विविधतावादी हैं। सनातन धर्म की जो परंपरा है, वह विविधतावादी है।

बहुत सारे संप्रदाय हैं कि उनकी हर दिन की अलग–अलग योजनाएं हैं। हर दिन का खाना अलग, कपड़ा अलग, सजावट अलग। कोई बेहद सौंदर्यप्रेमी हैं और वह ऐसा है कि एक दिन के सौंदर्य से काम ही नहीं चलता। इससे अलग एक रंग वाली गेरू वाली भी धारा है। विविधताओं से भरी दुनिया है हमारी, लेकिन उनमें संगति के सूत्र हैं और समाज को जोड़ने वाले सूत्र हैं। हम उत्सव प्रेमी हैं और हमारे यहां उदासीन अखाड़ा भी है।

बड़े भाई, अनुपम भाई यहां बैठे हैं। उनसे मैंने एक रहस्य प्रसंग में कहा कि मेरे मन में एक भाव है। इन बातों पर एक किताब लिखना चाहता हूं। तो उन्होंने कहा कि खबरदार, हर चीज किताब में नहीं लिखी जाती। सारी बातें किताबों में लिखने की थोड़े ही होती है।

बात इतनी वाजिब है कि मेरी पूरी किताब लिखने की योजना खटाई में पड़ गई। बहुत अच्छा हुआ। इसलिए मैंने किताब नहीं लिखी। लेकिन नहीं लिखी तो बेहतर है, अच्छा है। उन्होंने मना कर दिया इसलिए मैंने नहीं लिखी। लेकिन यदि मैं लिख देता तो उन सूत्रों को नालायक लोग समझते और दुरुपयोग करते। उससे बेहतर है कि नहीं लिखा।

उसमें से एक–आध उदाहरण के लिए कह देता हूं। जैसे धर्म है एक –सनातन धर्म। जैसे चतुर्वर्ग वाले हैं। उसमें किसी व्यक्ति का धार्मिक जीवन पूरा तब तक नहीं होता जब तक वह तीर्थयात्रा नहीं करता। जो हिंदू समाज का प्रचंड अहंकारी वर्ग है– वह ब्राह्मण है, क्षत्रिय है। वैश्य लोग समझदार लोग हैं। वे इसमें क्यों पड़ें? कभी–कभी उनको भी अहंकार चढ़ गया है। इसके भी पर्याप्त विवरण हैं। लेकिन वैसे वे कमाल के लोग हैं। धर्म को इन्हीं लोगों ने चलाया है।

और कुछ जातियों को भारी छूट है। सबको छूट नहीं है। आप दिन में तीन बार धर्म परिवर्तन कर सकते हैं –जैन, बौद्ध, सनातनी हो सकते हैं। यह कुछ ही जातियों को छूट है। सबको ऐसी छूट नहीं है। उन्होंने बहुत अच्छे काम भी किए हैं। लेकिन जिन लोगों को समाज को जोड़ना था, उनके बारे में भी तो सोचिए कि उन्होंने क्या उपाय किए?

अरे, इतने रजवाड़े तो लड़ ही रहे हैं। तारीखें तय हैं कि इस दिन को लड़ाई शुरू ही करनी है। नहीं तो लड़ाई करने का नाटक शुरू करना है। आप राजा हैं। अगर आप लड़ाई नहीं करेंगे तो ऐसा कैसे चलेगा? वह तो करनी ही पड़ेगी। नहीं तो नाटक तो करना ही पड़ेगा। पंचांग में तारीखें तय हैं कि किस दिन फौज लेकर चलना ही है। दोस्ती भी है, रिश्तेदारी भी है। तो क्या करें? एक रस्म अदायगी तो लड़ाई की जरूर होगी। वह कर भी लेते थे।

लेकिन जिनको समाज को जोड़ना था, उन्होंने भी कुछ दिमाग लगाया। कहा कि यह धार्मिक जीवनयात्रा तीर्थयात्रा के बगैर पूरी नहीं होगी। छोटे से आदमी के लिए भी

बताया कि कम से कम आप इतनी जगह घूम लीजिए। और अगर आप हैं हैसियत वाले तो आप दक्षिण भारत से, वहां से चलिए और हिमालय तक आपको जाना है।

हिमालय तक आपको जाना है, तो वैसे ही तो नहीं चले जाएंगे? यदि आप राजा हैं, रजवाड़े हैं तो तमाम रियासतें बीच रास्ते में पड़ेंगी। तीर्थयात्रा करने चले हैं, युद्ध करने नहीं चले हैं। तीर्थयात्रा में युद्ध वर्जित है इसलिए दोस्ती तो करनी ही पड़ेगी।

तो उपाय क्या है? यहां से वहां तक – सबसे परमीशन मांगिए। सबको उपहार दीजिए, सबसे उपहार लीजिए और बीच में जितने पुरोहित, पंडे, ब्राह्मण वर्ग के लोग हैं, साधु–संत संप्रदाय के लोग हैं, सबके पैर छूते हुए यहां से वहां तक जाइए। और वहां से वापिस लौटकर अपनी घर–बिरादरी में खबर कीजिए कि मैंने इतना–इतना ऐसे पूरा किया। तब उसकी जांच होगी। भोज दीजिए, खाना खिलाइए। फिर माना जाएगा कि आपने तीर्थयात्रा की। गुप–चुप थोड़े ही चलेगा!

तीर्थयात्रा में केवल दर्शन का तो कोई मतलब ही नहीं है कि गए किसी मंदिर में – थोड़ी सी रेजगारी ले ली और थोड़ा सा चावल मूर्ति पर दे मारा। इसका तो कोई मायने मतलब ही नहीं है। केवल दर्शन शब्द का तो कोई मतलब ही नहीं है।

अब देखिए कि समाज इस व्यवस्था में जुड़ता है कि नहीं जुड़ता। वहीं देखिए। ब्राह्मण हैं, तो ब्राह्मण अहंकार की यह हालत है कि वह छुआछूत में फंसा है। यह जो छूत है, छुआछूत का विषय है। यह बड़ा मजेदार विषय है। इसको ठीक से नहीं समझा गया। मैं अपने बहुत सारे बुजुर्गों से सहमति नहीं रखता हूं। उन्होंने छुआछूत के विषय को समझने में कोताही की है कि यह मामला कैसे उलझा है।

और जैसे मैंने अभी कहा कि हालात तो ऐसे हैं कि हिंदू मुसलमान की तरह और मुसलमान हिंदू की तरह जीते हैं। तो मैंने देखा, जो मैंने महसूस किया कि छुआछूत की समस्या तो पुरानी है। आपको, बहुत से लोगों को यह बात मालूम नहीं होगी कि एक ब्राह्मण दूसरे के यहां खाते–पीते नहीं थे। मतलब कि कच्ची–पक्की रसोई, छुआछूत का लफड़ा था और सब यही कहते थे कि हम तो सर्वश्रेष्ठ हैं। हमसे तो श्रेष्ठ कोई हो ही नहीं सकता।

तो जिन्हें सबको जोड़कर रखना है, उन्होंने सोचा कि इस तरह के पागलपन में समाज का जो प्रभुत्व वाला वर्ग है, यदि इस तरह से अंहकारी हो जाए तो कभी तो इसे पंक्चर करो, इसकी हवा निकालो। अब तीर्थ में जाएंगे तो यहां से वहां तक पैर छूते हुए जाएंगे और वहां से वापस भी वैसे ही होंगे। सारी हेकड़ी गुम।

यह समाज जोड़ने की व्यवस्था का एक उदाहरण है। ऐसी अनेक बातें हैं, जिसके चलते भारतीय समाज इतनी चुनौतियों का हजारों साल से सामना करते हुए भी कुछ न कुछ बचाकर रखे हुए है। उसमें से एक स्वधर्म है। उसमें संगति को अब मैं कंप्लीट करूंगा क्योंकि तीन और विषय हैं।

तो धर्म के तीन अर्थ हैं –एक स्वभाव वाला अर्थ, दूसरा अर्थ हो गया कर्तव्य वाला

अर्थ और तीसरा हो गया व्यवस्था वाला। उसमें संगति यह है कि हमारा जो स्वभाव है, वह हमारा अधिकार है। व्यवस्था जो है, वह हमारे स्वभाव के विपरीत नहीं बन सकती। अगर बनती है तो अत्याचार है। यह स्थापित सामाजिक मूल्य है, जिसको आज की कोई राज्यसत्ता या धर्मसत्ता का कोई व्यक्ति कत्तई मानने को तैयार नहीं है, जैसा कि मुझे लगता है। ... नहीं तो बस सारा गेम ही खत्म हो गया।

यह बहस और यह दावा केवल धर्मशास्त्रों में नहीं है। वह नाटकों में भी आता है। कालिदास का अभिज्ञान शाकुंतलम् नाटक बहुत चर्चित नाटक है। उसमें राजा की अंगूठी गिर जाती है, जिसे मछली निगल लेती है। मछुवारा मछली को काटता है और उसके पेट से अंगूठी पाई जाती है।

वह पकड़ा जाता है और उसे राजा के दरबार में पेश किया जाता है तो उसमें जो बाकी ... राजा के लोग हैं, वे कहते हैं कि यह तो बहुत बदमाश आदमी है, पतित आदमी है, हिंसा करता है। उसको लोग बहुत सी गालियां देते हैं।

लेकिन वह मछुआरा अड़ जाता है। कालिदास का श्लोक है – ''सहजं किल यत् विनिन्दितम्, नहितत् कर्म विवर्जनीयकम्"। आपके निंदा करने से कुछ नहीं होगा। हमारा सहज जो कर्म है, उसे आप मना नहीं कर सकते। वह सवाल उठाता है।

यह आज की नई बहस नहीं है। बहुत सारे लोग विचलित हो जाते हैं अगर कोई नया आदमी सवाल पूछ ले। सवाल पुराना है, जवाब भी स्थिर है। वह चैलेंज करता है न्याय व्यवस्था के सामने। न्यायाधीश के समक्ष वह स्थिर है। ''सहजं किल यत् विनिन्दितम्''...

किल का माने–निश्चित रूप से। मछुआरा कहता है अगर यह सिपाही निंदक है तो निंदा करने से क्या होता है? हर एक–दूसरे की निंदा करते हैं। आप तो कानून वाले हैं, कानून वाले मना नहीं कर सकते। नहि त् कर्म विर्वजनीयकम्। इस कर्म को आप मना नहीं कर सकते। उसे आप उसे प्रोहिविटेड वाली लिस्ट में नहीं डाल सकते।

मछुआरा सवाल पूछता है कि –पशुमारण कर्म दारुणम्, अनुकंपा मृदुरेवश्रोत्रियः। ये जो श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं, वे भी तो यज्ञ में पशु मार ही देते हैं। तो साहब, मैं मछली मारता हूं तो आप मेरे मछली मारने को कैसे गलत कह सकते हैं?

स्वाभाविक है कि कोई सजा नहीं होती है। क्योंकि यह जो सिद्धांत है– स्वधर्म, इसके विरुद्ध व्यवस्था नहीं हो सकती। और होगी तो चलेगी भी नहीं। आग का स्वभाव है जलाने का। तो क्या फायदा है उसके विपरीत व्यवस्था बनाने का? आग बुझेगी तो रहेगी ही नहीं। वही काम तो उसका होगा, जलाने का। इसलिए मनुष्य का स्वभाव है, स्वधर्म है, मुक्ति पाने का। लाख कोशिश करेंगे आजादी की लड़ाई, आजादी की जंग जारी ही रहेगी।

यह हमारा धर्म वाला एक भाग, मैंने जो समझा अपने लिए, वह यह है। इससे बहुत सारे लोग असहमत हो सकते हैं, मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है। जब तक कोई मेरे स्वध र्म का अपहरण करने नहीं आए, जब तक अपहरण न हो, तब तक वह खुद ही अपना

स्वधर्म बना ले। क्या फर्क पड़ता है? ... या उसको जो स्वधर्म अपनी परंपरा से प्राप्त हो।

बाद में गेम यह हुआ कि लोगों ने कहा कि साहब, स्वधर्म तो है, उसे पहचानें कैसे? यह एक बुनियादी सवाल है। इसे समझेंगे, तभी संगति बनेगी। संगति तो हो गई। अब स्वधर्म कैसे पहचानें? यहां से, इसके बाद भी गहरा खेल है। कहेंगे कि तुम्हें तुम्हारा स्वधर्म नहीं पता, तुम्हारा स्वधर्म मैं बताऊंगा। अजी! स्व माने मैं और मेरा और आप कैसे बताएंगे हुजूर? तो कहा कि तुम अक्लमंद नहीं हो। तो कहा कि अक्लमंदी से धर्म का कोई लेना–देना नहीं। यह तो स्वभाव है, हमें पता है। तो अंततः इस बहस पर बाकी सारे लोगों को झुकना पड़ा।

तब एक राजनीति हुई कि भाई, यह स्व मतलब क्या है और उसके होने पर ही सवाल हुआ। दूसरी धारा के लोग, जिनको हुकूमत चलानी है, सत्ता स्थापित करनी है, ऐसे थोड़े आसानी से बैठ जाएंगे? तब यह गेम हुआ कि स्व क्या है? तो उसके गेम भी मेरी समझ में आता है कि जो उसका स्व है वही मेरा स्व है। वह आपके कहने से नहीं है या जो मेरा वातावरण और परिवेश है, इस बिंदु पर 'मैं आप' की बाकी सारी चीजें हैं, उसी हिसाब जुड़ता है। यह जो प्रकृति है वह बड़ी है और स्व अकेले नहीं बनता, यह भारत में एक बड़ा चिंतन है।

अभी ज्यादातर यह हो गया है कि स्व मतलब कि हम अकेले हैं, बाकी नहीं हैं। एक नाउन है, उसके बहुत सारे एडजेक्टिव हैं। एक सबजेक्ट है और बाकी बहुत सारे प्रेडिकेटस हैं, एक्सटेंशन ऑफ प्रेडिकेट्स हैं। एक्सटेंशन ऑफ एडजेक्टिव एंड एडवर्ब्स हैं।

अगर उस लैंग्वेज की टर्मिनोलॉजी में कहें, तो आप एक विशिष्ट हैं और विशेष्य और विशेषण का संबंध है। और मैं हूं तो मुझे पता है कि मैं हूं, इसीलिए मैं हूं। सबको यह बोध होता है कि मैं हूं। इसके बाद जैसा मेरा विशेषण है, जिसका जैसा विशेषण है, वह वैसा है। बच्चा है, तो वह है। तब उसका स्वधर्म आप कैसे तय करेंगे? वह सबके लिए कॉमन हो ही नहीं सकता। बच्चे का अलग, बूढे का अलग। क्या मैं वह काम करूंगा जो पांच साल का बच्चा करता है?

एक दिन मेरे बेटे ने कहा, मेरे आस–पास के उसकी उम्र के लोगों ने कहा कि यह क्या सनक है आपलोगों की? खब्त हो गई है। जहां आपलोग जुड़ जाते हैं मर्द और औरत, बस एक ही चर्चा कि इस लड़के की इससे शादी करवाओ, उसकी उससे शादी करवाओ। आपलोगों को और कोई काम नहीं मिलता?

उस लड़के ने मुझसे पूछा तो मैंने कहा कि यह बता कि तुम इतना नाराज क्यों हो? अब यह बताओ कि यदि हम अपने लिए फिर से शुरू कर दें, कि हम औरतें और लड़कियां ढूंढ़ना शुरू करें और मर्द अपनी शादी के बारे में योजना बनाएं तो बर्दाश्त होगा क्या? अब हमें तो यही काम है कि तुमलोगों की शादी कराने के बारे में सोचें। जहां लड़का–लड़की मिल गए तो वहां उनकी जोड़ी बनाना शुरू करें।

उम्र के हिसाब से यही तो हमारा स्वधर्म है। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो जरूर गड़बड़ी है। बाल–बच्चे की शादी और उनको खुश रखने तथा खुश रहने देने के बारे में सोचना छोड़ पचास साल के बाद वाले लोग, यदि हमलोग अपनी ही शादी के बारे में सटिस्फाइड नहीं हो रहे हैं, अभी मन में दुविधा ही बची है, इसका क्या इलाज है? वे तो अपने स्वधर्म से ही च्युत हो रहे हैं। इसका क्या कोई उपाय है? इलाज भी है?

उस पर काम पुरुषार्थ वाले समय में मैं आऊंगा। यह हमारा फ्रेम है। इस ढंग से लोगों ने सोचा और सारी बहस को इस फ्रेम के भीतर रखकर सोचा, तभी विविधताओं की आजादी मिली। अगर स्वधर्म नहीं मानेंगे तो हम विविधतावादी, बहुलतावादी दृष्टिकोण नहीं रख सकते। स्वधर्म को यदि हम नहीं मानें, तो मुक्ति का कोई मायने ही नहीं होता है। फिर मुक्ति का कोई मायने रह नहीं जाता। और भी जो पॉलीटिकल आजादी के एंगल होते हैं, उन्हें कभी मौका मिलेगा तो शेयर करेंगे। आपसे भी सीखेंगे।

vFk

अब मैं आता हूं अर्थ पर। यहां पर अर्थ पारिभाषिक है। अर्थ का मतलब है आजीविका, संपत्ति और कर। हमारे शब्दों के साथ कुछ बुजुर्ग लोगों ने गड़बड़झाला कर दिया, चुरा लिया है। इससे हमारे 15–20 बेशकीमती शब्दों के अर्थ गायब हो चुके हैं। नई पीढ़ी ऐसा मान रही है जैसे कि यह 'अर्थ' खरहे का कोई सींग हो। वह होती है कि नहीं? होती होगी या नहीं होती होगी? लेकिन गायब तो हो ही गई होगी। इस तरह की बकवास बहसें चल रही हैं।

जो अर्थशास्त्र है, इसकी एक परंपरा है–पूरी की पूरी। अब वे कह रहे हैं अर्थशास्त्र, जो इकोनॉमी का तर्जुमा वाला अर्थशास्त्र है लेकिन वह हमारा अर्थशास्त्र नहीं है। उसमें आदम स्मिथ तो है ही नहीं, उनका नाम भी नहीं लिखा गया है। तो उनके द्वारा जो परिभाषाएं दी गई हैं, वह हमारा अर्थशास्त्र कैसे हो गया?

राजा पहले थे, शिल्प था। इतने व्यापार हो रहे थे तो टैक्सेशन तो होगा ही। टैक्सेशन की जितनी जटिलताएं... आज के समय में, उसका जितने भी प्रकार से वर्गीकरण कर लें, उसमें कंप्यूटर से जो घालमेल किया जाता होगा, उसको छोड़कर रोकड़–बही जहां तक है, वहां तक की बेईमानियों का विवरण भी हमारे वाले अर्थशास्त्र की पुस्तकों में मिलता है। और कैसे बेईमानी से टैक्स लिया जाना चाहिए, ईमानदारी से कैसे टैक्स लिया जाना चाहिए, काबिल लोगों को बेवकूफ बनाकर राजा को संपत्ति कैसे अर्जित करनी चाहिए, ये सारे छल–प्रपंच भी अर्थशास्त्र की पुस्तकों में मिलते हैं।

इसका कंटेन्ट क्या है, इसकी सूचना मैं आपको देता हूं। आप अंदाजा लगा लीजिए कि क्या हैं ये अर्थशास्त्र की किताबें। वहां पता है कि टैक्स कलेक्टर सबसे भारी चोर होता है। उसकी चोरी पकड़ने का कैसे उपाय करें? क्योंकि जो व्यापारी वर्ग है, वह उसको रिश्वत दे देता है और यह कह देता है कि साहब, माप–तौल में गड़बड़ी हो जाती है। तो माप–तौल का अध्यक्ष होगा। माप–तौल विभाग नया नहीं है। तो पहले भी माप–तौल

के बाट रखे जाएंगे, उसपर ऐसी मुहर लगेगी, आदि ये सारी बातें हमारे अर्थशास्त्र की पुस्तकों में मिलती हैं।

भाई विजय प्रताप जी ने मुझे एक किताब दी थी पढ़ने को। तो उसमें वही अर्थशास्त्र के तर्जुमे वाली बात है। तो फिर वहीं से शुरू करते हैं कि यह जो फंस गया है कि यदि यूरोप वाले ही केवल और केवल अक्लमंद हैं, उनके अलावा सारी दुनिया में सारे लोग केवल बेवकूफ ही होते हैं और ...हिस्ट्री को एक ब्लैक हिस्ट्री और व्हाइट हिस्ट्री बना लिया। ...सबमें वे ब्लैक हिस्ट्री ही लिखते हैं। चाहे वह जियोग्राफी का मामला हो या अन्य का,कि यह तो काला पक्ष है। इससे पहले हिस्ट्री नहीं थी और हिस्ट्री तो यहीं से शुरू होती है।

माफ कीजिए, मेरा मकसद किसी पर कटाक्ष करने का नहीं है। लेकिन रेफरेंस करने का प्वाइंट वही होता है कि यदि ईसा मसीह साहब पैदा नहीं हुए होते तो संसार में कुछ हुआ ही नहीं होता। इस तरह का रेफरेंस लेकर साइंस और टैक्नोलॉजी की बात अगर की जाती है तो पूरी की पूरी बेमानी हो जाती है। और चूंकि सोशल साइंस ने सांइस होने का दावा किया है इसलिए मेरा आरोप उनपर भी लाजमी बनता है।

अगर .... बाकी, वह कोई धार्मिक व्यक्ति प्रवचन करता हो तो कोई बात नहीं। लेकिन कोई व्यक्ति जब साइंस की बात करते हैं, तो उस फ्रेम में यह बैठता नहीं है।

अर्थशास्त्र की तमाम किताबें हैं। यह हो गया आजीविका का पक्ष। इसमें सबसे मशहूर किताब हुई है कौटिल्य का अर्थशास्त्र, चाणक्य का अर्थशास्त्र। वह बाजार में उपलब्ध है हिंदी ट्रांसलेशन के साथ। अंग्रेजी के साथ अन्य भाषाओं में भी हो सकता है। देखने की चीज है। वे लिखते हैं कि इससे पहले भी अर्थशास्त्र नाम से किताबें चलती थीं और टीकाकार ये लिखते हैं कि इसके बाद भी कई किताबें अर्थशास्त्र के नाम से आईं।

पानी की व्यवस्था कैसे करें? जमीन कैसे सुधारें? अक्लमंद को बेवकूफ कैसे बनाया जाए? अक्लमंद कौन हैं? उनकी दृष्टि में दो ही अक्लमंद हैं एक तो ब्राह्मण अक्लमंद हैं, जो बेसिकली बेवकूफ है और दूसरा व्यापारी वर्ग।

माफ करना, अब यह चाणक्य कह रहे हैं। हमलोगों को गालियां दीं। मगध वाले को ज्यादा चाणक्य के कारण भी गालियां पड़ी हैं। उन्होंने किसी को नहीं छोड़ा। और अपनी जात वालों को तो छोड़ा ही नहीं, राजा के सामने। कहते हैं कि जितनी बंजर, खराब वाली जमीन है, वह ब्राह्मणों को दे दो। टैक्स मत लेना। ये दिलो—जान से इसको आबाद कर देंगे। उनको यह अक्ल आती है कि बंजर जमीन—ऊसर जमीन को उपजाऊ कैसे बनाएं। इनको दान में दे दो, तो वे लगे रहेंगे और यह माफी है कि साहब, इनसे टैक्स नहीं लेना है। यदि ये बदमाशी करें, लड़ाई—झगड़ा करें, दंगे करें तो इनसे सजा के रूप में वह सारा वापिस ले लेना है।

अब यह कौन दावा करे कि लड़ाई—झगड़े नहीं होंगे, क्रिमिनल एक्ट नहीं होंगे। यह पूरा विवरण आपको कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उपलब्ध होगा। इसमें मेरी कोई ईजाद

नहीं है। सच कहिए तो मैंने जो भी कहा है, उसमें मेरी अपनी कोई ईजाद नहीं है। मेरी पसंद–नापसंद जरूर है।

इस प्रकार यहां अर्थ का मतलब आजीविका और संपत्ति है। अब यह तर्क ... यह कि संगति कैसे बने? तो यह संगति क्या है? यदि कोई कर, टैक्स आजीविका को नष्ट करने लगे तो वह स्वतः ही नष्ट हो जाएगा। थोड़ी देर के लिए तो यह हो सकता है। लेकिन बहुत सिंपल सी बात है कि कोई कर या टैक्स ... कर और शुल्क, दोनों का प्रयोग किया गया है।

यह सब गोलमाल है। असल बात वही है, उसमें से पैसा निकालने की। कहीं एक कर, उसकी टेक्नीकल परिभाषाएं जो भी बदल लें, अर्थ एक ही होता है। जैसे कि अमुक–अमुक अवसर पर लिए जाने वाले कर को शुल्क कहते हैं। अमुक अवसर पर कर कहते हैं। तो ये पारिभाषिक शब्द हैं।

यदि आजीविका ही न रहे तब क्या होगा? तो आजीविका के शब्द का ... जो आजीविका अर्थ है ... तो कर उतना नहीं हो सकता कि आजीविका ही खत्म हो जाए। जब राजा अत्याचारी हो जाता है तो अंत में राज्य समाप्त हो जाता है। व्यापारी वर्ग को अगर मुनाफा ही नहीं होगा तो कौन माल बेचने आएगा?

चाणक्य ने यह भी हिदायत कर दी है कि देख भाई! कर के बिना तो राज्य नहीं चलेगा लेकिन यह जो कर है, यह आजीविका को बढ़ाने वाला कर ही होना चाहिए और ऐसे मौके–बेमौके कोई अकाल आ जाए, कोई संकट आ जाए तो वह याद रखना कि जो संपत्ति को बढ़ाने वाला आदमी है, उससे कम कर लो। जैसे, जो नई खेती बनाएगा, नए तालाब बनाएगा उसे केवल करों में माफी ही न दो बल्कि उसे सपोर्ट भी करो क्योंकि आजीविका रहेगी तभी कर अधिक आएगा। यह संतुलन बनाकर रखो।

यह अर्थ का मामला आया। इसके बावजूद, इस सारी सफाई के बावजूद, इन विसंगतियों वाले भी राजे–रजवाड़े पर्याप्त हुए और धर्म का पुरुषार्थ वाला यह जो दूसरा क्षेत्र है, उसमें उन्होंने भारी अतिक्रमण किया। इसके चलते बहुत सारी समस्याएं पैदा हुईं क्योंकि अर्थ की भी जटिलताएं उतनी ही हैं और मैं समझता हूं कि डायरेक्ट टैक्स और इनडायरेक्ट टैक्स, इतने शब्दों से काम चल जाएगा। सभी समझदार लोग ... सभी ज्ञानी लोग यहां पर हैं, तो जानते हैं कि इनडायरेक्ट टैक्सेशन में बेवकूफ बनाकर कर लिया जाता है और डायरेक्ट टैक्स में थोड़ा देने वाले को सीधे–सीधे जोड़ता है। तो ये खेल–तमाशे हैं, ये पहले भी हो रहे थे। आज उसे ज्यादा जटिल तरीके से ... उसे बना दिया है।

dke

अब आते हैं काम पर। यह बड़ा ही विचित्र और जरूरी विषय है। बाकी लोगों का नजरिया क्या है? बाकी लोगों में भी यह बहुआयामी है और मैं जो समझता हूं कि काम की जो बहस है, उसमें मोक्ष से ज्यादा गंभीरता से लोगों ने इसे लिया है।

हमारी तो पैदाइश ही इससे होती है। अगर काम न हो और काम का मतलब सेक्सुअल डिजायर, सेक्सुअल प्लैज़र, सेक्सुअल एक्टिविटी ... मैं इस पारिभाषिक संदर्भ में ही रख रहा हूं – उसके पीछे का भी जो संदर्भ है, वह भी और उसके बाद का भी। यह मामला अस्तित्व का है। अस्तित्व से इसकी कथा शुरू होती है और कॉस्मिक आर्गाज्म तक जाती है। इसके लिए जरा मुश्किल हो रही है शब्दों की।

वह अस्तित्व से लेकर कॉस्मिक आर्गाज्म, मतलब कि यह ब्रह्मांडीय जो संभोग है, संभोगकालीन जो चरम सुख है, मैं उसी के संदर्भ में कह रहा हूं। वहां तक इस काम की व्यापकता है और वह वैसा सुख है। वह पॉजिटिव है। वह नेगेटिव नहीं है। वह बंधन से मुक्ति जैसी अभावात्मक अवधारणा नहीं है। आमतौर पर जितनी बातें ज्ञात हैं, उनको कहने की कोई जरूरत नहीं है लेकिन जो बातें आमतौर से चर्चित और ज्ञात नहीं हैं, उनके बारे में तो कुछ कहना पड़ेगा।

यह हमारे यहां की जो परंपरागत समझ है, उसमें कहा गया कि कोई न तो पूरी तरह से मर्द है, न कोई औरत है। तो इस फ्रेम के साथ बात होती है। हर आदमी आधा आदमी है, आधा मर्द है, तो एक आदमी मर्द है और एक औरत है, इस फ्रेम में वह काम नहीं करता। तो बाकी जो बहसें हैं, जो इस फ्रेम में हैं कि एक आदमी आधा मर्द है और आधा औरत, इस फ्रेम में वह बहस काम की नहीं हो सकती। केवल इसी फ्रेम में नहीं हो सकती। वह इस फ्रेम में होगी कि पूरी तरह से कोई न मर्द है, न औरत है।

अब यह कोई कह सकता है कि यह तो सारी काल्पनिक बातें हैं। यह तो आपका मिथ है। यह तो आपकी माइथोलॉजी है। यह हुआ करे या न करे, यह अलग बात है लेकिन यह हमारी चिंता का विषय जरूर रहा है।

चिंता होने का विषय यहां तक है कि शादी होने से पहले लड़का–लड़की दिखाने की प्रक्रिया में भीतर के मर्द और औरत की पहचान जरूर होनी चाहिए, तब जाकर उसकी शादी होनी चाहिए। और कुछ क्षेत्रों में, बनारस के पूर्व में इसकी सावधानी रखी गई कि जब तक यह–जैसे कोई लड़की है, तो जब तक भीतर वाले मर्द से उसकी जान–पहचान नहीं हुई और अगर लड़का है, तो भीतर वाली औरत से जान–पहचान नहीं हुई, तो वे शादी नहीं होने देंगे। यह इतना सीरियस कन्सर्न है।

और नहीं होने देंगे तब क्या करेंगे? तो अगर आप समाज के व्यवहार में कोई पैमाना तय करेंगे, तो जिम्मेवारी लेनी पड़ेगी। तब इसकी जिम्मेदारी औरतों को दी गई। यहां तक कि जो ब्राह्मण जातियां हैं या क्षत्रिय, या जो अपने–आपको सवर्ण जाति का कहते हैं, या जो अपने–आपको बहुत ज्यादा काबिल मानते हैं, उनके यहां भी ट्रेनिंग का काम औरतों का है। केवल वही ट्रेनिंग दे सकती हैं। और वे लोग अकेले नहीं, बाकी अन्य जाति वालों के साथ मिलकर ट्रेनिंग दे सकती हैं। उस ट्रेनिंग के दौरान कोई मर्द अलाउड नहीं होगा।

अब चीजें बिगड़ी हैं। लेकिन यदि मैं अपने बचपन तक से याद करूं तो हमारे यहां चीजें तब तक बची हुई थीं। यह कोशिश होती थी, चाहे कोई जाति हो। उसमें संस्कृत

के मंत्र–वंत्र की कोई जरूरत नहीं है। यह जो पैमाना होता है, उसमें यह है कि साहब, यह तो क्या बकवास है, लोकाचार है। क्या उलझनें हैं! यह सनक है, वगैरह–वगैरह जो गालियां हो सकती थीं, वह उसको दी गईं।

उस समय जितनी जरूरी चीजें थीं, वह की जाती थीं। खूब गालियां होती थीं। लड़के–लड़की को खूब सताया जाता था। उनको पूरी तरह से उत्तेजित किया जाता था। इसके बाद भी संयमित रहना है। उन सारी भद्दी–भद्दी बातों के बीच काम की चीजें बता दी जाती थीं। और आपको जानना है, सुनना है, समझना है, धीरज के साथ। तैयारी करके घर से जाना है। लड़की जाए या लड़का जाए ससुराल। फिर वहां उसकी जांच भी होनी है। एग्जामिनेशन वहां है।

कुछ क्षेत्रों ने तो यह नियम बनाया कि आप वह वैदिक मंत्रों वाली शादी रखिए अपने पास, हम लड़का–लड़की को ... लड़की को तो नहीं क्योंकि है तो यह पुरुष–प्रधान देश, तो लड़की को तो लड़के के यहां जाना है ... तो साहब वह बारात जाए वापिस। हो गया ऊपर का काम, दिखावटी काम, इसका कोई वैरिफिकेशन नहीं है। हम लड़के को रोक लेते हैं। यदि ट्रेनिंग उसके अपने घर में पूरी नहीं हुई, शर्म खा गईं उसकी मां–बहनें, तो हम यहां पर पूरा कर लेते हैं और टेस्ट कर लेंगे तब मानेंगे कि शादी पक्की है वरना शादी टूट सकती है। और यदि उस पीरियड तक शादी टूट जाती है तो उसको टूटी हुई शादी नहीं माना जा सकता।

यह है समाज की स्वीकृति। आप रखिए अपना धर्मशास्त्र। कहां गया धर्मशास्त्र? क्योंकि यह जो चार पुरुषार्थ वाला हमारा फ्रेम है, यह हमारे समाज का फ्रेम है। उससे बड़ा जाति का फ्रेम नहीं हो सकता। समाज के फ्रेम के बाहर अगर जाति जाएगी तो वह असामाजिक जाति है। सीधा–सीधा मामला है।

मान लीजिए कि आप असामाजिक हैं तो उसके दंड का भी प्रावधान है, अगर नहीं मानते तो? तो वहां से शुरू होती है कहानी। यह जो सो कॉल्ड सेक्स की परिभाषा है ... या किसी भी भाषा का मैं शब्द प्रयोग करूंगा तो वही होगा इसलिए आप मुझे इजाजत दें कि कभी–कभी मैं उस तरह के शब्दों का प्रयोग कर सकूं वरना इस विषय पर बात नहीं हो सकेगी। यहां बड़े लोग भी हैं और छोटे लोग भी हैं। लेकिन फिर भी, कोई छोटा बच्चा तो है नहीं। यहां सभी लोग अनुभवी हैं। तो बात यह है कि आपको उत्तेजना का पता ही नहीं है। जो ऐसे कई जैसे बिंब हैं ... हमारे यहां एक बिंब है। यदि हम उस बिंब को नहीं समझेंगे तो बात क्लीयर नहीं होगी।

अब हम उस बिंब को समझेंगे कि साहब शिव जी ने तीसरा नेत्र खोला और कामदेव भस्म हो गए। अब क्या होगा? अब सृष्टि कैसे चलेगी? कामदेव तो जल गए। पहले क्या करते थे? कामदेव कुछ उपाय करते थे– कुछ ध्वनि का उपयोग करते थे, गंध का उपयोग करते थे, रंगों का उपयोग करते थे। मुख्य रूप से गंध का। बाकी जीवों में जैसे होता है, हमारी भी उत्तेजना गंध आधारित ही मुख्य रूप से थी। ध्वनि भी थी, लय भी था और

आकर्षण था जो सभी जीवों में होता है।

तो मनुष्य में क्या घटना घटी? यह एक बिंब है, जिसमें कहा गया कि कामदेव नष्ट हो गया। यह बिंब में कहा गया और बाद में इस अर्थ को शादी–ब्याह के समय में खोलकर समझाया जाता था कि इनके मायने–मतलब क्या हैं। और ऐसे बहुत सारे बिंब हैं।

हमारे यहां पूछा जाएगा कि क्या कामाख्या गए थे ? क्यों गए थे? गए थे तो क्या हुआ? शादी हो रही है और वही सब पहेलियों में बताई जाती हैं। कोई नहीं गया आसाम, न कामाख्या। ससुराल से घूमकर आया तो आ गया कामाख्या से।

बात इतनी सी है। ससुराल जाएं कि कामाख्या जाएं, बात एक ही है। और दर्द वही है कि ससुराल में बस गया, वापिस नहीं आया तो भारी मुसीबत है। कोई आसाम में जाकर बस गया, वहीं पर रह गया, स्त्री सत्ता में विलीन हो गया, पुरुष सत्ता में विलीन नहीं हुआ तो संकट दोनों का बराबर होगा–ससुराल में बसने का और कामाख्या में बसने का। अगर लड़का चला गया उधर, तब? इस प्रकार बिंब एक ही आयेगा।

हां, तो मैं खुद ही भूल गया था कि क्या प्रसंग चल रहा था। जी हां, शिवजी वाला। तो कहा गया कि आपने तो अनर्थ ही कर दिया। संसार का तो आपने नाश ही कर दिया। मानव जाति तो गई, बाकी तो सभी जीव–जंतु पैदा होंगे लेकिन मनुष्य पैदा कैसे होंगे?

तो कहा गया कि अब ऐसा करते हैं ... आपको नेक काम के लिए जगाया गया था। आप तो एकांत व्यक्तिवाद में डूबे हुए थे। इस संसार का क्या होगा? ऐसा व्यक्तिवाद तो ठीक नहीं है। आपके नितांत व्यक्तिवाद में विघ्न डाला गया तो आपको इतना गुस्सा आ रहा है। नेक काम के लिए आपको परेशान किया। अब कुछ पुरस्कार भी दे दीजिए। तो उन्होंने कहा कि अच्छा ठीक है। अब कामदेव मानव के मन में ही रहा करेंगे। आगे से काम भावना के लिए उसके जागरण के लिए किसी बाहरी सहारे की जरूरत नहीं रहेगी।

उसके बाद अब सपने में भी काम भावना सताती है। अब औकात हो कि न हो, वह अब 80–90 साल की उम्र में भी सताती है। और नौजवान, जिनकी क्षमता हो, उनके साथ ... और हमलोगों के साथ क्या होता है, वह सब लोग जानते हैं। वह बताने की जरूरत नहीं है। कुछ लोगों ने कहा कि हमारे व्यक्तिवाद का क्या होगा? तो कहा कि यह तो सूत्र शिवजी ने दे दिया। दोनों सूत्र दे दिए। इसमें कोई बाहरी जरूरत नहीं है। यह तो भीतर से चलेगा। तो दूसरा भी सूत्र आ गया कि भाई! ''काम जानामि ते मूलम्।'' हम तो तुम्हारी जड़ ही जान गए –"काम जानामि ते मूलम्, संकल्पात् किल जायसे"। तुम तो संकल्प करने पर ही पैदा होते हो। "नाहम् संकल्पयिष्यामि।" मैं संकल्प ही नहीं करूंगा। "तेन त्वम् न भविष्यसि।" तब तुम पैदा ही नहीं होगे। तो तुम परेशान क्या करोगे?

कहना आसान है लेकिन उस मेंटल स्टेट वाले के लिए संभव है, जो कोई संकल्प नहीं करता। बाकी कामों के लिए जब संकल्प आप करते हैं, आदत लगी ही हुई है तो ऑटोमेटिकली स्वतः हो ही जाएगा। अगर किसी चीज के लिए यूं ही मस्ती में रहते हैं।

अपने में, आपके लिए आपको परवाह नहीं, तो इसकी (काम की) भी परवाह नहीं होती है। ऐसा अनुभव तो हम सबको भी कभी न कभी होता ही है।

हम जब लापरवाह होते हैं, तो कब पता चलता है, जैसे कि मैट्रो में, दिल्ली की पुरानी बसों में, कि बगल में मर्द है या औरत? यह सब जब हम कुछ सावधान होते हैं, कुछ सोचते हैं, तभी पता चलता है वरना तो पता भी नहीं चलता।

ऐसा यह काम का फ्रेम। इससे भी सीरियस फ्रेम है। लोगों ने कहा कि इसलिए एक जो हम बंधन/बंदिश लगाए हुए हैं, वह यह कि साहब, इस काम का उद्देश्य क्या है? तो यह विषय धर्म में आया। धर्म में अपनी–अपनी ... लोगों ने वहां विविधतापूर्ण व्याख्याएं दीं। मैंने जो धर्मशास्त्रों में पढ़ा है एक रिसर्च के दौरान ... विभिन्न क्षेत्रों में धर्मशास्त्र के अलग ग्रंथ हैं। उनको पढ़ने में मजा आया। कुछ मजबूरी भी थी।

आप जानते हैं सत्यप्रकाश मित्तल जी को। उनलोगों का ग्रुप एक रिसर्च कर रहा था भीख मांगने वाली विधवाओं के ऊपर। उसमें मैं दुभाषिए के तौर पर काम कर रहा था। मैं ... जो सोशिएयोलॉजी एन्थ्रोपोलॉजी वाले लोग हैं या पुराने धर्मशास्त्री लोगों के बीच में संस्कृत पढ़कर ... जो धर्मशास्त्री हैं दक्षिण भारत के, उन्होंने हमसे कहा कि हमसे तमिल में बात करो, संस्कृत में बात करो या तो तेलगू में बात करो, नहीं तो हम हिंदी में बात नहीं करेंगे, न हम अंग्रेजी में बात करेंगे। तब यह उनलोगों के सामने समस्या खड़ी हुई। मैं बच्चा था परीक्षा का परिणाम आने में देर थी, तो उस हिसाब से मेरी ड्यूटी लग गई।

उस लिहाज से धर्म तो अधर्म से भी जुड़ेगा। धर्म से बिना जुड़े तो व्यवस्था रूपी जो अर्थ है ... और व्यवस्था रूपी अर्थ तो धर्म का सब जगह लागू होगा।

लेकिन काम तो स्वभाव है। पुरुष और स्त्री का विपरीत लिंग वाले के प्रति आकर्षण होता है। यह एक प्राकृतिक सत्य है। इसी क्रिया से हम पैदा हुए हैं। हम भी यही करते हैं और अगली पीढ़ी भी यही करेगी। तो हमारा यह कर्तव्य बनता है कि इस व्यवस्था को जारी रखने के लिए अनुकूल परिस्थितियों का सृजन करें। इसकी सही व्यवस्था हो।

इसमें दो पेंच हैं। एक पेंच यह है कि प्रजनन की पेंच है और उत्तराधिकार की पेंच है और प्रजनन तथा उत्तराधिकार के साथ फिर वही संपत्ति की पेंच है। इसमें भी फिर स्वधर्म आयेगा। अब लाहोल–स्पिति के इलाके में या हिमालय के अन्य दुर्गम इलाकों में, जहां इतनी जमीन है ही नहीं है कि आप उसका बंटवारा कर सकें, तो आप करेंगे क्या? वह कोई मैदानी क्षेत्र तो है नहीं कि थोड़े जंगल और साफ किए और जमीन बढ़ा ली। तब वहां काम पुरुषार्थ के लिए ही नहीं, और अन्य मकसद से भी जो विवाह संस्था बनेगी, उसका स्वरूप वही नहीं होगा।

कामाख्या में, असम में जो खासी समाज है, उसके यहां जो विवाह संबंधी अवधारणा होती है, वही नहीं होगी क्योंकि स्त्री–प्रधान क्षेत्र है। मर्द का कोई मूल्य ही नहीं है। एक जानवर से भी घटिया मूल्य है, बेशक चाहें कितने में भी खरीद सकते हैं। किसी नारीवादी

को बौरो करना हो, तो सो कॉल्ड नारीवादी बौरो कर सकती हैं।

इधर लोगों ने कहा कि खबरदार, कामाख्या नहीं जाना है। वहां स्त्री सत्ता है। बाकायदा एक्सचेंज हो सकता है। घर के भीतर एक्सचेंज कर सकते हैं। और अगर मर्द की कीमत ज्यादा है, उसको घर से बाहर निकालने में कीमत ज्यादा देनी पड़ेगी तो उसे राइट है – एक मर्द को औरत के बदले एक औरत।

तो अमूमन यह किया गया जैसा कि ... साहब, बेईमानियां ही तो हैं। उसमें औरतें कम क्यों रहें? यदि मर्दों ने इतना किया है तब ... कहा कि घर की बूढ़ी मरने वाली के साथ तुम्हारा रिश्ता जोड़ देते हैं। या तो कंपेंसेशन ले लो या फिर बुढ़िया ले लो। तो उसमें बिना कंपेंनसेशन लिए हुए ही मर्द घर से भाग खड़ा होता है। यह भी एक सत्य है।

यह अपना मुल्क है ... मैं अपने मित्रों से कहता हूं कि क्या समान नागरिक संहिता की बकवास कर रहे हो? यह कोर्ट की मजबूरी है, हमारी मजबूरी तो है नहीं। यह कोर्ट की मजबूरी है। कोर्ट की मजबूरी में भी हमें सहानुभूति रखनी होगी। मैं अगर बहक नहीं रहा हूं तो ... वह अभी मुकदमा याद नहीं है, रेफरेन्स मैं बाद में दे भी सकता हूं। कोर्ट की मजबूरी यह है कि खासी समाज के युवक सुप्रीम कोर्ट में मुकदमा करते हैं कि बाकी जगह आपने यह प्रोहिबिशन एक्ट लागू किया है कि यहां के लोगों की शादी बाहर नहीं होगी। हमारी पहचान को ... जो सुरक्षित जनजातियां हैं, उनके लिए आपने कानून में कुछ प्रावधान कर रखे हैं। तो यह हमारी खासी जनजाति सुरक्षित जनजाति है। ऐसी व्यवस्था अन्य कहीं नहीं है। यहां हमारी लड़कियों और औरतों पर पाबंदी लगाई जाए कि ये हमसे बाहर में शादी न करें। यह सुप्रीम कोर्ट में मुकदमा दायर होता है कि खासी समाज के बाहर शादी न करें। खासी समाज की बात है।

तो बेचारा कोर्ट! वह नया वाला पैमाना जो है, जो यह समानता वाला है इसमें फंसे? और बाकी जगह पर इंटरकास्ट मैरिज आदि की बात होती है, जिसको कानून में मान्यता है, वह सबको कैसे दे? और भारत में ही ... एक टुकड़े के लिए भारत में एक औरत को अपने मन के मुताबिक शादी करने की रोक कैसे लगाएं? और यदि लगाए तो फिर वह जो संरक्षण वाला मामला है, वह खंडित हो।

अगर किसी का इसी तरह से अपमान हो जाएगा तो हो जाएगा। जो कानून बनाने वाले लोग हैं, कितनी गंभीरता से कानून बनाते हैं और इन कानून बनाने वाले मसलों पर कानून बनाने वाले संसद में या स्टेट काउंसिल में किस तरह की बहस की प्रक्रिया होती है, वह तो हमें बताने की जरूरत नहीं है। उससे उन्हें कुछ लेना–देना नहीं है। वह तो ड्राफ्ट कमेटियां वगैरह जो प्रपोज कर दें, साहब वह स्थानीय जरूरतों के हिसाब से जो थोड़ा–मोड़ा हो जाए, उससे कोई मतलब नहीं। कोर्ट दबाव देता है तो बहुत सारे कानून बनते हैं। यही हमारा हिसाब है।

संन्यास आश्रम वगैरह की, धर्म की जो व्यवस्था है ... जो अभी एक नौजवान पूछ रहे थे कि है या नहीं। सिलसिला इतना व्यापक नहीं है। मॉडल है। अगर व्यापक होता तो

उसकी अंदरूनी व्यवस्था होती। हमारा जो हिमाचल प्रदेश का या जो कामाख्या का इलाका है, दोनों जगह जाने से वहां पर खतरा है। उधर बिहार वाले को कामाख्या से खतरा है। और इधर कुल्लू से –जो जाए कुल्लू, हो जाए उल्लू। तो कुल्लू–मनाली न जाना।

और जो चलेंगे तो किसी समाज पर टिप्पणी हो जाएगी। ऐसे बहुत सारे स्लोगन्स चलते हैं लेकिन मैं उनपर नहीं जाऊंगा। लेकिन स्लोगन चलते भी हैं और लोग उसे सीरियसली लेते भी हैं।

जमीन बंट नहीं सकती तो विवाह और काम पुरुषार्थ को इस तरह से लागू किया कि एक लड़के को तो गोंपा में जाना है साहब। एक को शादी करना पड़ेगा और वह दूसरा जाएगा बौद्ध मठ में या शैव मठ में। बौद्ध मठ ही हैं। शैव मठ बहुत ही कम हैं, न के बराबर हैं। तो उनको तो जाना पड़ेगा।

एक भाई गया। मुख्य लक्ष्य संपत्ति और उत्तराधिकार पर ध्यान केंद्रित है। इस विवाह नामक संस्था को, जो धर्म की मूल नैतिकता है, उससे कोई लेना–देना है, ऐसा मैं कुछ नहीं समझ सका। इसीलिए मैंने शुरू में माफी मांगी थी कि मैंने जो समझा है, वह मैं कह रहा हूं।

मुझे नहीं लगा कि विवाह जैसी संस्था में जो भारतीय धर्म के पैमाने हैं और जो बड़े–बड़े मानक, जो चर्चित मानक हैं, उसका ख्याल रखा गया हो। बिल्कुल नहीं। वहां भी स्वधर्म का ख्याल रखा गया है कि साहब, हमारा तो यही हाल है, अब क्या बाटें? इतने छोटे–छोटे जो टुकड़े हैं, उसमें कैसे हिसाब बांटें? तो लिहाजा हम आबादी ही बांट लेते हैं। हम प्रजनन के इस अधिकार को बांट लेंगे।

लेकिन काम, जो स्वभाव है, उसका क्या होगा? वह तो प्राकृतिक सत्य है। अपनी मर्जी से कोई साधु हो जाए, बैरागी हो जाए, घर छोड़कर चला जाए, तो बात अलग है। लेकिन यदि आप एक नियम बनाते हैं कि आपको जाना ही है तब? तब एक्सीडेंट तो होना ही होना है।

यदि कोई उस पैमाने को कहे कि वह तो गंदगी है तो कहे लेकिन उन्होंने तो गंदगी नहीं मानी। जब हमने यह व्यवस्था बनाई, तो गंदगी कैसे है? लिहाजा वह गोंपा/मठ में जाने वाला कॉस्मिक ऑर्गाज्म वगैरह पर एक्सपेरिमेंट करेगा। कहां से करेगा? वहां समलैंगिकता का केंद्र थोड़े बना है। वह तंत्र परंपरा का अभ्यास करेगा।

तो कहा कि उसको यह अधिकार होगा कि वह गांव में आए और लड़कियों को मांगे। और उसको लड़की देना गौरवशाली काम है। और बच्चा पैदा हो गया तो वह परिवार का बच्चा है। तब उसकी आइडेंटिटी पर, उसकी पहचान पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं है। यह गौरव की बात है। उस लड़की की फिर से शादी हो सकती है। इसमें कहीं कोई समस्या नहीं है।

यह मिला–जुला रूप वाला है। फिर भी, लड़के की संतान की पहचान मूलतः मां

से जुड़ी है। यह थोड़ी खिचड़ी व्यवस्था है। तो यह समस्या ही नहीं है। यह मर्द गया, वह मर्द गया, उससे क्या? मां तो पक्की है। उसमें कोई समस्या ही नहीं है। तो उन्होंने इस प्रकार इस हिस्से को, काम–पुरुषार्थ को व्यवस्थित किया है।

बहुत से लोगों ने इसे एक क्षेत्र में सीमित किया है कि साहब, मथुरा के चौबे जी लोग तो शहर से बाहर जाते ही नहीं हैं। हमारे मालवीय जी हुए, हमारे यहां महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी हुए। मथुरा वाले। अब साहब, वह समस्या खड़ी हुई कि अब क्या होगा? यहां तो मायका, ससुराल सब एक ही जगह है। दिन भर घूमना–टहलना ही मुख्य काम है। ऐसे में परंपरा टूटी, वहां नियम टूटे। चतुर्वेदी जी सपरिवार बीएचयू में रहे।

उसके पहले, जैसा कि मैंने कहा कि तारवाड़ वगैरह जो कर्नाटक, तमिलनाडु की कुछ परंपराएं हैं, वहां कुल की शादी है – व्यक्ति की शादी ही नहीं है। विवाह यह है। बच्चे पैदा हो गए तो क्या होगा साहब? तो हुआ यह कि ग्रैंड टोटल में ... पूरी प्रोपर्टी का जोड़ लो, उसका ग्रैंड टोटल जोड़ लो और बांट लो। किसका बच्चा है, किसे पता? जब लड़की का विवाह ही नहीं है तो कैसा बच्चा? अब यह भी बहुत बदल गया है।

तो जब किसी ने बनाया ऐसा तरीका, विविधतापूर्ण, तो इसके लिए बड़ा दिल चाहिए। हिंदुस्तान ... आप जिसे कहते हैं भारत, उसे समझने के लिए बड़ा दिल और बड़ा दिमाग चाहिए। कितने करंट लगेंगे समझने के लिए, कहना मुश्किल है।

मैंने इसमें मुलायम–मुलायम उदाहरण रखे हैं। वस्तुतः जो अंग्रेजी में है माइंड ब्लोइंग वाला तो, वह तो है ही नहीं। अगर बहुत सारे उदाहरण मैं रखने लगूं, तो यहां तो आपलोग शिष्ट–सज्जन हैं वरना बहुत कुछ हो चुका होता। लेकिन इसे समझने के लिए अब एक फ्रेम–दो फ्रेम ... जो चाहें वह करें, कुछ होने वाला नहीं है।

अब जो सीरियस कनसर्न है, इसका काम वाला, वह कॉस्मिक ऑर्गाज्म वाला है। उन्होंने कहा कि यह तो पूरी प्रकृति ही रतिक्रिया में लगी रहती है। हमारे लिए इसमें छुपने–छुपाने और लजाने–शर्माने वाली कोई बात भी नहीं है। इसके विभिन्न स्तर हैं और भिन्न–भिन्न उपाय हैं। जैसे कि समस्या है, इसलिए पेंटिंग में भी आ सकता है। मंदिर के चित्रों में भी आ सकता है। किसी को शर्म लगे, तो लगे।

उड़ीसा के राजा को शर्म आई तो जगन्नाथ मंदिर और लक्ष्मण मंदिर में जो भित्तिचित्र थे, उसमें उन्होंने प्लास्टर ऑफ पेरिस चिपका दिया। फिर किसी को समझ आई कि बुनियादी बात तो खत्म हो गई। तो फिर उसने फिर से खरोंचकर उखड़वा दिया। तो ये सारे एक्सपेरीमेंट भी चलते रहते हैं। मतलब ये कि ये प्रकृति में है।

हमारे यहां योग और तंत्र की दो धाराएं हैं टैक्नीकल एक्स्पर्टीज के मामले में। यहाँ तक मैंने आम आदमी, समाज के चलन की बात रखी। लेकिन टैक्नीकल एक्सपर्टीज के मामले में दो धाराएं हैं –योग की और तंत्र की।

तंत्र की धारा का मूल मकसद यह है कि हम समाज के तथाकथित नियमों को बहुत

ज्यादा महत्त्व नहीं देंगे। समाज को प्रकृति के अनुरूप चलना होगा। हम प्रकृति के नियमों की कद्र करेंगे। समाज तो बहुत छोटा है। फिर मानव समाज क्या है? भारतवर्ष में इतनी विविधतापूर्ण परिस्थितियां हैं ... उसमें तो और भी छोटे–छोटे टुकड़े हैं।

यह वाजिब है, यह गैर–वाजिब है, यदि ऐसा बना लिया तो चला हमारा रिसर्च का, एक्सपेरीमेंट का काम? हम इसकी परवाह नहीं करते। ज्यादा परेशान करोगे तो हम क्लोज ग्रुप बना लेंगे। ज्यादा परेशान करोगे तो हम जंगलों में इधर–उधर घुस जाएंगे। और नहीं कुछ हुआ तो जो ज्यादा प्रयोगवादी हुआ, तो श्मशान में रहना शुरू कर देंगे।

हमारी कोई दौलत नहीं है। टैक्स लगाओगे किस पर? मेरी कोई पहचान या फिर ध ान–दौलत होगी, तभी तो टैक्स लगाओगे और तभी तो मेरे पर धर्मशास्त्र लागू करोगे? हम तो अपनी दौलत से मुक्ति पाते हैं और अपनी पहचान से मुक्ति पाते हैं। पहचान जो सबसे बड़ी है, वह जाति की पहचान है। तो उन्होंने कहा कि यह पहचान मिटाने की कोशिश करो। तो यह एक्सपेरीमेंट बहुत पहले से चल रहा है।

क्षमा करें, कुछ लोग सोचते होंगे कि यह हमारे ही ग्रुप के पूवर्जों ने शुरू किया। यह नहीं है। यह तो बहुत पहले से चल रहा है। तो यह हम नहीं मानेंगे। अब क्या करोगे? नियम लागू कैसे होगा? इसके बहुत सारे एक्सपेरीमेंट हुए और सेक्स को लेकर, कामेच्छा को लेकर बहुत ... प्रकार–प्रकार के प्रयोग हुए। साधुओं ने भी प्रयोग किया और गृहस्थों ने भी प्रयोग किया। उसके असंख्य उदाहरण हैं लेकिन इसका जो मूल सूत्र है वह यह है कि साहब, इसमें बहुत कीमती बातें हैं, जो लोग नहीं कहते हैं। बीच वाली बातें कहते हैं ताकि एक सस्पेंस बना रहे।

मैंने आपलोगों को वाजिब मानते हुए, यह माना है कि सब लोगों को भले ही ये बातें न बताई जाएं लेकिन वाजिब लोगों को तो बतानी ही पड़ेगी। टेक्नोलॉजी नहीं, बेसिक सांइस वाली बातें हैं। उस पर बहुत सारी चर्चाएं हैं, बहुत सारी ब्राडिंग हैं। टेक्नोलॉजी जब हो जाती है तो उसमें बहुत सारी ब्राडिंग हो जाती है और उसका कॉर्पोरेट सेक्टर बन ही जाता है। पहले भी बन जाता था, आज भी बन जाता है, आज भी है। एक से एक कंपनियां, प्रापर्टी राइट आदि इंटरनेट पर मिलता है।

तो उन्होंने कहा कि जो प्रकृति है वह हमको पुरस्कार देती है। जीने का पुरस्कार देती है ... जैसा कि प्रकृति का पुरस्कार का सिद्धांत है। हम भी तो पशु हैं, जानवर हैं। तो प्रकृति हमें कैसे संतुलित करे – दंड और पुरस्कार से?

हमें जीने का पुरस्कार मिलता है। और वह जीने का पुरस्कार क्या है? हम जब सांस लेते हैं, बहुत बेहतरीन, अच्छी सी सांस लेते हैं और जो सुकून मिलता है, वह मस्ती आती है उस मस्ती का सच में तब पता चलता है, जब हम सफोकेशन से निकलते हैं। जब किसी घुटन से बाहर जाइए और सांस लीजिए, तब पता चलता है कि बहुत अच्छी गहरी सांस कितनी कीमती है। जब दौड़कर हांफते हुए आते हैं तो पता चलता है प्रॉब्लम का। और जब रिलैक्स होते हैं, तो लंबी सांस आने लगती है। और जब धक–धक अनुभव

होता है फेफड़े पर, उसका जो सुकून है, वह प्रकृति का पुरस्कार है, हमारे जीने का। यदि वह न हो तो जिया ही न जाए। और हमारा एक सूक्ष्म कण अमृत का, आनंद का, रस का, वह हर दिल की धड़कन के साथ होता है। तब हम स्वस्थ रह पाते हैं। तो स्वस्थ रहने के लिए भी वही आधार है।

और, सृष्टि को आगे बढ़ना है। तो ये जो हम विभिन्न प्रकार से सुख भोगते हैं ... पांच इंद्रियां हैं और उनके माध्यम से हम सुख भोगते हैं। अब वह सच्चा है या झूठा है। कभी–कभी यह कई बार भ्रम में भी कर लेते हैं, इससे मतलब नहीं रहता है। जीभ जो सेंस करती है, वह सेंस करती है, उसका इंद्रिय से ग्रहण होता है –यह मुख्य है। यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है कि क्या खाते हैं? किसी को कुछ खाना पसंद है तो किसी को कुछ खाना पसंद है लेकिन अपने स्वाद के हिसाब से खाना सबको पसंद है।

खूबसूरती के पैमाने अलग हो सकते हैं लेकिन अपने पैमाने के हिसाब से खूबसूरती सबको पसंद है। और खूबसूरती का एहसास होने से सबको अच्छा लगता है। तब हर आदमी को स्वधर्म के हिसाब से खूबसूरती का पैमाना तय करने का हिसाब है, नहीं तो हिन्दुस्तान का काम कैसे चलेगा?

रंगों का डिफरेंस यहां भी कम नहीं है हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक। इसके फारमूले खोजे गए कि खूबसूरती कहते किसे हैं। इसका पैमाना निकाला गया, उसका आनुपातिक संबंध निकाला गया। अगर यह नहीं निकाला जाए तो खूबसूरत मूर्तियां कैसे बनें? तो यह जो खूबसूरती का पैमाना है, उसके लिए भी सोचा गया क्योंकि खूबसूरती हमें पसंद है।

यह तो आंख का मामला हुआ। आंख ही नहीं, इस पर पुरस्कार पूरा मिलने वाला है। कहा कि जो प्रजनन की क्रिया है, जो स्त्री–पुरुष का मिलन है, वह प्रकृति की पसंद का मामला है। और औरत का जो संतान को पालने का काम है, वह मर्द तो कर नहीं सकता।

वैसे साइंस ने बहुत कुछ नया–नया कर रखा है। आगे क्या चमत्कार होगा, वह देखा जाएगा। लेकिन फिलहाल तक बच्चा पैदा करने, उसे पालने–पोसने, उसे खड़ा करने का मुख्य जिम्मा औरत के जिम्मे है। उसमें उसको सुख होता है और उसमें सर्वाधिक सुख होता है। इसमें मैं अधिकारी नहीं हूं टिप्पणी करने का।

इसमें अगर मैं कुछ गलत कहूं तो माफ करना। तो उसको जो दूध पिलाने का संतान को, जो सुख है, वह प्रकृति को मान्य है और अद्‌भुत है। मैं एक मर्द के लिहाज से कह सकता हूं। औरत के लिहाज से मैं आदर करता हूं। मैं भी उसी तरह से, उसी से पैदा हुआ। मेरी मां नहीं होती तो मैं न होता।

स्तन पीना और पिलाना उस समय का सुख सारे सुखों से अलग है। मैं समझता हूं कि अधिसंख्यक लोग तो इससे सहमत होंगे, और उसका प्रबल आकर्षण है। बाकी जो

शास्त्र के, नैतिकता के प्रावधान करने वाले चाहे जो प्रावधान करें लेकिन यह प्रकृति–प्रदत्त यह जो स्वभाव है, स्वधर्म है, यह जो प्रकृति है, वही असली है।

मैं कहूं कि मुझे बच्चा पैदा करने का अधिकार है लेकिन यह भी प्रकृति–प्रदत्त नहीं है। बच्चा पैदा करने का मूलतः प्रकृति–प्रदत्त अधिकार औरत को है, मर्द को नहीं है। मर्द के लिए परिवार वगैरह की सरंचना की बात आती है लेकिन ऐसा कोई जो प्रजनन, जो संतान की उत्पत्ति और उसके बाद की जिम्मेवारी से भागता हो, वह प्रकृति के, अनुकूल नहीं है। मनुष्य के, मर्द के बारे में कह रहा हूं कि नहीं ऐसा हो तो बच्चा मर जाएगा। अगर परिवार या समाज उसकी जिम्मेदारी न ले तो नवजात बच्चा तो मर ही जाएगा। ऐसा तो नहीं है कि दो–चार घंटे या दिन में वह अपने पैर पर खड़ा हो जाएगा।

हम तो सबसे निरीह, असहाय जीवों में से हैं। इतना तो कमजोर कोई है ही नहीं। कोई हम अंडे से थोड़े ही निकल रहे हैं। हमें तो मां का स्तन का दूध पिए बिना, अपनी नहीं तो किसी दूसरी मां का सही, जिससे भी हो, लेकिन उसके बगैर हमारा जीवन नहीं है। तभी उस प्रजनन में प्रकृति का पुरस्कार है।

तो वह क्षणिक, दो–तीन सेकेंड वाला चरम सुख न हो, इसलिए वह पुरुषार्थ है। वह चरम सुख पाना और प्रजनन करना भी हमारा पुरुषार्थ है। और उसके बाद वात्सल्य सुख भोगना भी है। और वह सबसे गहरा इसलिए है कि बतौर टेक्नोलॉजी, उस समय पांचों इंद्रियां एक आलंबन में लीन होती हैं।

हमारे यहां उसका पूरा कामशास्त्र आएगा। क्षमा करें, वात्स्यायन का काम सूत्र शास्त्र नहीं है। वह राजाओं की रंगरेलियों की किताब है। वह परंपरागत शास्त्र, आम आदमी वाला नहीं है। उसका विवरण अलग है।

अगर पांचों इंद्रियां विपरीत आलंबन में, स्त्री हो तो पुरुष, पुरुष हो तो स्त्री ... अगर पांचों एक आलबंन में नहीं टिकती हैं, तो साहब, आसानी से दिल की धड़कन बंद नहीं होगी, साहब सांस नहीं रुकेगी। वह मजा तो तभी मिलता है, जब सांस रुकती है और दिल की धड़कन कुछ समय के लिए रुक जाती है।

चूंकि हमें मरने की प्रैक्टिस नहीं है, इस मजेदार मौत मरने की लंबी प्रैक्टिस नहीं है, एक क्षणांश की प्रैक्टिस है। लोगों ने कहा कि मैंने तो जान लिया। अब ऐसा उपाय लगाते हैं कि यह जो सेकंड वाला मामला है, यह घंटों में जाए, ये दिनों में जाए। तो अब तो समस्या खड़ी हो गई। घंटों–दिनों तक आपकी सांस कैसे रुकेगी क्योंकि उसकी शर्त तो यह है कि आपकी सांस कैसे भी रुके। और इसमें शर्त तो यह है कि दिल की धड़कन कुछ देर के लिए बंद होनी चाहिए, तभी वह मजा आता है। फिर उसपर बहुत ज्यादा काम हुआ।

मैं समझता हूं कि इससे ज्यादा आज की बहस का मुद्दा नहीं होगा कि मैं टेक्नोलॉजी के विस्तार पर जाऊं। मैं उन स्कूलों से भी एसोसिएटिड रहा हूं इसलिए मैंने उस पर

किताब अलग से लिखी है। वह छपी नहीं है।

इसलिए हमारे यहां दो शब्द आए रति और सुरति। और जितनी निर्गुण धाराएं हैं। उनमें सुरति को रखा गया। और जो परंपरागत परिवार होते हैं, तंत्र वाले, उनके यहां की यह शर्त होती है कि ... शादी के पहले कुछ शर्तें अमल में होती हैं। यह स्त्री पर लागू नहीं है। यह लड़के पर लागू है कि वह जो सैकिंडों वाला खेल है, बिना किसी औरत के, अपने भीतर उसे उस अनुभव तक पहुंचा दे कि कम से कम दो–चार घंटे वाला, घंटा–दो घंटा वाला तो हो ही जाए।

मैं टेस्ट–टयूब बेबी तो नहीं हूं लेकिन संयोग से सामाजिक लेबोरेट्री में पैदा हुआ और ऐसी ही विपरीत धाराओं के बीच जिंदा रहा। तो मेरे ऊपर भी वह एक्सपेरीमेंट किया गया है। तो मैंने पत्नी को तो बाद में जाना। मेरी पहचान भी पहले भीतर वाली औरत से ही कराई गई। फिर सवाल हुआ कि शादी करने की जरूरत क्या है?

एक हमारी चाची थीं, मित्र की मां। उन्होंने कहा कि पत्नी की, बीबी की जरूरत तो पचास साल बाद होती है, मैं जानती हूं। तब तुम क्या करोगे? उस समय तो तुम्हारे लिए कोई औरत बैठी नहीं मिलेगी? तो मैंने सोचा कि क्या किया जाए?

अब तो कोई उपाय नहीं है। अभी तो मेरी उम्र 24 साल की है। ये तो पचास साल वाली बात कह रही हैं। और मैं ऐसा नहीं सोच सकता कि वे गलत कह रही होंगी।

जो सुख की बात है, अगर हमें इस हद तक गहरा सुख चाहिए, तो साहब, यहां छोटे–मोटे बंधनों से कोई मायने–मतलब नहीं रखता। नैतिकता का पक्ष समझने में गलती हो रही थी। नैतिकता का पक्ष इतना ही है और उसे अनिवार्य रखा गया है। इसमें स्त्री को विशेषाधिकार दिया गया है कि आप बिना औरत की मर्जी के कुछ भी नहीं कर सकते हैं। और अगर यह नियम मान लिया जाए, तो मैं समझता हूं कि नैतिकता के बहुत सारे सवाल यूं ही हल हो जाएंगे।

अब बच्चा उसे पैदा करना है, जिम्मेदारी उस पर पड़ेगी तो उसकी मर्जी पर नैतिकता का पैमाना होगा या उन पर जो पतली गली से खिसकने वाले हैं? उनकी मर्जी नैतिकता का पैमाना बनेगी, यह कैसे हो सकता है? यह तो प्रकृति को मान्य नहीं है। बच्चा मर जाएगा यदि उसे परिवार न अपनाए। बाकी की नैतिकताएं छोड़ दीजिए।

कुछ लोगों ने कहा कि समाज अपनाए। ऐसे भी प्रयोग के मैंने अनेक किस्से देखे हैं। क्या बताऊं, कितने दर्दनाक हालात होते हैं! मैं जाति व्यवस्था, अंतर्जातीय व्यवस्था के बारे में कत्तई नहीं बोल रहा हूं। यदि स्वीकृत है कहीं पर और उससे बच्चे को सहारा मिलने वाला है, तो अलग बात है। लेकिन यदि आपने अंतर्जातीय विवाह किया तो किया? ऐसे बहुत सारे प्रयोग हुए हैं।

लेकिन बच्चा पैदा करने से पहले इतना तो सोच लीजिए कि वह संभलेगा कैसे? यह जिम्मेवारी बनती है। फिर उसके बाद झगड़ा न कीजिए कि बच्चा किस जाति वाला

होगा, किस धर्म वाला होगा। यह तो पहले सोचना चाहिए। और बच्चे की टांग क्यों उखाड़ रहे हो? पहले अपना मामला हल कर लो। और हां, अगर यह हल हो गया, तो उसके बाद जो करना है सो कर लो। उसके बाद आप बच्चे को संभाल सकते हैं। तो यह वाजिब है और प्रकृति के अनुरूप है और यह हमारे फ्रेम में भी आता है। और इसकी मान्यता दी गई है।

यह काम वाला प्रसंग तो बहुत लंबा हो गया। यह जितना रोचक, जितना आकर्षक है, उतना ही करुण भी है, उतना ही दर्दनाक भी है। इसकी ठीक समझ नहीं होने की हालत यह है कि इस स्वधर्म और इस मूल नैतिकता की आज अपनी–अपनी सुविधा से व्याख्याएं हैं। ...

जो घटना बलात्कार की और बाकी सारी होती हैं, ये झूठ और दमन के दुष्परिणाम हैं, यह हम स्वीकारते नहीं हैं। एक बार का एक वाकया मैं शेयर करता हूं। एक बार एक बड़ी सभा हो रही थी, हिंदुस्तान के बहुत सारे काबिल लोग जुटे थे। एक बड़े भाई की मेहरबानी से मुझे भी जाने को मिला।

तो वहां लोग कह रहे थे कि यूरोप वालों से, इंटरनेट वालों से अपसंस्कृति आ रही है। सेनसुअलिटी और सेक्सुअलिटी का बहुत विस्तार हो रहा है, इस पर कुछ प्रतिबंध लगने चाहिए। और फिर एक आदमी ने जोड़ा कि साहब, ये तो दिमाग खराब कर देते हैं। वे हिंदुस्तान के नामी लोग हैं।

मैंने उनसे सवाल पूछा कि मैं तो जैसे–जैसे बड़ा हो रहा हूं, मेरी काम भावना का तो निरंतर विकास ही हो रहा है। मैं खुलकर जी भी रहा हूं लेकिन समाज के किसी आदमी ने मुझे मना नहीं किया कि मेरी ये जो हरकते हैं, वे समाज में मान्य नहीं हैं। हमने जितनी कथा–कहानियां–नाटक पढ़े, वह तो दूसरे के बारे में ही पढ़ते हैं। अपने बारे में क्या पढ़ें, वह तो जीते ही हैं। तो यह कब से वर्जित हो गया कि दूसरों के संबंधों के बारे में हम ध्यान भी न ले जाएं? हम तो जी ही नहीं सकेंगे?

उन्होंने कहा कि ऐसा कैसे कि जी ही नहीं सकेंगे? मैंने कहा कि मुझसे ही सुन लीजिए। मैं बड़ा भाई हूं। हम भाई–बहन मिलाकर सात हैं और मैं बड़ा भाई हूं। जैसे मैं झोला टांगने, झोले का वजन संभालने के लायक हुआ ... बड़े–बुजुर्गों ने तब कहा कि चलो, लड़का खोजना है तो झोला कौन ढोएगा? कालेज में पढ़ता था तो रिश्तेदार भी पकड़कर ले जाते थे झोला ढोने के लिए। और तुर्रा यह कि इसकी ट्रेनिंग हो जाएगी।

क्या करते, लड़की देने के लिए लड़का ढूंढ़ने तो जाते ही थे। किस काम के लिए जाते थे? उसी काम के लिए तो जाते थे। हम तो जब से इंटर में दाखिल हुए, तब से झोला ही तो ढो रहे हैं और यही चर्चा सुन रहे हैं कि इसकी जोड़ी वैसे बैठे और इसकी कद–काठी यह है।

अगर कोई सामुद्रिक शास्त्र–सूत्र वाले मिल गए तो यह भी बताएंगे कि देखो इसको

प्रजनन में यह समस्या आयेगी, इसका तालमेल वैसा नहीं है। इसके लिए वैसा लड़का चुनना है। सब जगह वही चिंतन है।

और पशुपालक समाज के सामने तो सब नंगा ही नंगा है। हम तो पशुपालक समाज वाले गांव के आदमी हैं – खेती–किसानी, खेत और गाय–भैंस पालने वाले। तो ऐसे में कहां विकृति आ गई? कि यह इंटरनेट से आ गया तो ... उसके पहले ऐसा लगता है कि इससे पहले यहां आदमी थे ही नहीं। मनुष्य, नर–नारी कुछ नहीं।

इसके बाद मैंने मजाक किया कि साहब अब तो मैं बड़ा हो गया हूं अब तो मुझे अपने बेटे की शादी भी करनी है। यह सोच रहा हूं कि पता नहीं कैसी लड़की मिले? अपने बेटे की शादी भी करनी है। अब अगली पीढ़ी भी आ गई। शादी भी हो गई अब इस उम्र में यह सोच रहा हूं कि ऐसी लड़की मिले कि लड़के–लड़की का जीवन खुशहाल रहे। इनका जीवन सही रहे। वे प्रसन्न रहें, स्वस्थ रहें। और अगर मैं जिंदा रह गया तो अगली पीढ़ी के बाद भी मैं यह सिलसिला जारी रखूंगा। और करूंगा क्या?

लेकिन यह जो मैं रात–दिन करता रहता हूं, उसके लिए समाज ने तो मुझे कभी नहीं टोका कि मैं यह क्या काम कर रहा हूं। चिंतन का विषय तो यही है। यह जो काम भावना है, यह ... स्वधर्म में यह भी है कि ... जहां से मैंने बात शुरू की थी कि आपका जो 'स्व' है, उसको आपने फैलाया। अपने थे, एक को शामिल कर लिया परिवार में, एक औरत को शामिल कर लिया। आपने अपना 'स्व' फैलाया। बाल–बच्चे पैदा कर लिए। कितनी–कितनी शादियां कर लीं। रिश्तेदारी फैला दी।

तो आपने जो 'स्व' फैलाया तो ... वाह जी वाह! आप 'स्व' फैलाइए तो क्या स्वधर्म नहीं फैलेगा? तो जिस कामसूत्र से, जिस काम भावना से आपने यह सारी सरंचना खड़ी की, उसकी जिम्मेवारी कौन लेगा?

और नए जमाने में जो लड़का–लड़की शादी कर रहे हैं तो आपलोगों को परेशानी है कि साहब, यह अपनी मर्जी से क्यों कर रहे हैं। यह तो और गजब की बात है? न हम इधर रहेंगे और न ही उधर रहेंगे। तो यह तो कोई हिसाब–किताब नहीं बैठता। यह बैठता है कि साहब उनको पसंद करने दो। पसंद तो उनकी भी है लेकिन यह जिम्मेदारी तो कबूलो। और जब वे मान लेते हैं तो कम से कम उसे तहे–दिल से स्वीकार करो। तब यह काम पुरुषार्थ, प्रकृति–सापेक्ष, धर्म–सापेक्ष होगा।

मेरी बात यहां पूरी होती है। और मैं समझता हूं कि हमलोग जितने हैं, इस प्रोसेस से शायद ही कोई बचा हो और इस प्रोसेस से शायद ही किसी को शिकायत होती हो।

ek{k

तो अब लास्ट में, संक्षेप में मोक्ष पर आते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष चार प्रकार का हुआ। इसमें भी संगति यही है कि कोई भी प्रकृति–विरुद्ध जो स्वभाव है और स्वधर्म के विरुद्ध ... यहां भी वही नियम रहेगा कि स्वधर्म और स्वभाव के विरुद्ध कोई भी व्यवस्था बनती है तो वह धार्मिक व्यवस्था नहीं हो सकती है। वह कोई अत्याचारी और

आताताई व्यवस्था हो सकती है। और मुक्ति हमारा स्वधर्म है, हमको मुक्ति पाना है, हम मोक्षपरायण हैं इसलिए हम उस व्यवस्था को नकारते हैं।

अब मोक्ष की बात। तो इसके भावात्मक और अभावात्मक, दो स्वरूप हैं। अभावात्मक स्वरूप यह है कि जितना बंधन है और अज्ञान है, उससे मुक्ति। यह अभावात्मक ... निगेटिव सेंस में कहेंगे तो इस तरह से कहेंगे कि बंधन से और अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है। तो जो बौद्ध हैं, जैन हैं, जो हमारी पुरानी परंपराएं हैं, उसमें मोक्ष का यह अर्थ हो गया।

जो इधर की परंपरा है, उसमें भी मोक्ष का अर्थ होगा बंधन से, अज्ञान से मुक्ति। लेकिन इसके साथ–साथ इनका भावात्मक पक्ष भी है। इनका केवल मुक्ति से काम नहीं चलेगा। इनका भावात्मक पक्ष भी है। इनको पूरा ज्ञान भी चाहिए। अगर मुक्तिमार्गी हैं तो केवल यह नहीं कि हमारी जो उलझन थी, वह समाप्त हो गई। दुनिया कैसी थी, उससे हमें कोई मतलब नहीं। यह पूरे प्रोसेस में आएगा। यह कहना कि हम दुनिया को समझेंगे, उसमें कैसे फंसे थे यह भी जानेंगे ... जो हमारे यहां मूल सिद्धांत– त्रिगुण फांस का सिद्धांत है।

बौद्ध आदि परंपराओं में भी बाद में त्रिगुण फांस आ गया। तो भाई साहब, इस त्रिगुण फांस में हम फंसे हैं। अब यह जब केवल दार्शनिक बहस करते हैं तो इस बहस से कोई चमत्कार नहीं आता। लेकिन जब इस बात को जीवन की बहस तक पहुंचाते हैं कि मेरा त्रिगुण फांस क्या है, आपका त्रिगुण फांस क्या है, तब तो मामला आ ही जाता है।

जो अपने त्रिगुण फांस को समझ लेता है, उससे यह जो तिरगुनी माया है, वह लजा जाती है। उसकी तुलना वैसे ही है। कहा कि अब क्या नखरे आजमाएं तुम्हारे ऊपर? तुमने तो मेरा जो सौंदर्य है, जो नूर है, वह तो तू जान ही गया; मेरा तो कोई रहस्य ही नहीं बचा। तो लिहाजा, वह लजा जाती है।

हमारे अपने हाल–फिलहाल के उदाहरण से वह ज्यादा कीमती उदाहरण है। और वैसी अद्‌भुत व्याख्या, अद्‌भुत प्रयोग हुआ कि मैं गांधी जी पर श्रद्धा रखने वाले लोगों के सामने तो बार–बार दुहराता ही रहता हूं।

हमारे यहां अभी सबसे महान व्यक्ति हुए हैं –दशरथ मांझी। वे चर्चित हैं, जिन्होंने अपनी पत्नी की विरह में, याद में पहाड़ी काटकर रास्ता बनाया। बाद में लोगों ने उस रास्ते को और चौड़ा बना दिया ताकि गाड़ी आ–जा सके। यह तो चर्चित है, यह तो सब लोग जानते हैं।

यह तो एक पक्ष है। दशरथ मांझी और उनकी परंपरा के लोग दलित समाज को जो त्रिगुण फांस समझाते हैं, वह सुनिए। बाकी पढ़े–लिखे लोग अपना–अपना सोचें। मैं सबके कपड़े क्यों उतारूं? वे अपने से अपनी पहचान कर लें।

भुइयां, जो हमारे यहां मुसहर भी कहे जाते हैं, जो अंतिम पायदान के लोग हैं, उनके यहां दशरथ मांझी बाबा हैं, कबीरपंथी साधु हैं। कबीरपंथ में शादी–शुदा होने न होने को लेकर बहुत गंभीरता नहीं है। पर बात यह है कि खोलकर कहना पड़ेगा। यह नहीं कि हैं

भी और नहीं भी। इस तरह की दुविधा हटाइए। अगर हैं तो पति–पत्नी भी हैं, साधु भी हैं। तो वे अकेले भी हो सकते हैं।

वे कहते हैं कि देखो भाई! तुम अपने त्रिगुण फांस को समझो। एक–सवा महीने साधु रहता है। इस कथानक से, इस बिंब से मेरी समझ से अनेक प्रश्नों के सरल उत्तर मिलेंगे और यह काम का है। भुंइया दलित समाज में कबीरपंथी साधु जाता है क्योंकि बाकी ... इसी त्रिगुण के बिंब से ही ...बाकी शास्त्र हैं ... तो लेटेस्ट वाला ही लेते हैं, जो सफल है।

वे जाते हैं –कबीरपंथी साधु। एक दलित समाज, जो सूअर से, गंदगी से, पराकाष्ठा की समस्याओं से, सारी समस्याओं से ग्रस्त है। सारी कहना तो गलत हो जाएगा लेकिन जो बहुत सारी समस्याओं से ग्रस्त है। जो पायदान का सबसे निचला हिस्सा माना जा रहा है, जिसके उत्थान के लिए गांधीवादी, समाजवादी, वामपंथी, दक्षिणपंथी –पता नहीं कितने ही वादी लगे हुए हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी लगे हुए हैं और समस्या जस की तस है। न तो उनका कुछ बना पाए और न ही कुछ बिगाड़ पाए। और इस सारी प्रक्रिया में कई करोड़ों–अरबों रुपए खर्च हो गए हैं। एनजीओ का रजिस्ट्रेशन, एफसीआरए वगैरह–वगैरह बहुत सारा हो गया।

उस समाज के पास एक कबीरपंथी साधु जाता है। वह सात या फिर इक्कीस रोज रहता है और बहुत मन हुआ तो महीने–सवा महीने भर रहता है। इससे ज्यादा तो उसे अनुमति ही नहीं है। वैसे आमतौर से वह इक्कीस रोज रहता है। तो उसे इक्कीस रोज में वापस आना है। जो करना है उस इक्कीस रोज में करना है।

तो वह कबीरपंथ का निर्गुण भजन गाता है। उसके पास डफली होती है। उसकी एक भाषा है, एक पदावली होती है। एक शब्दावली है कि जो बहुत जोर देने के बाद भी समझ में नहीं आती है। भुंइया समाज को क्या समझ में आएगी? 'बरसे कमरा, भीगे पानी'। कंबल की बारिश हो रही है, पानी भीग रहा है। जहां ऐसी पदावलियों में गाना गाया जा रहा है, वहां क्या समझ में आ रहा होगा? बेशक नहीं समझ में आ रहा होगा? उसका कुछ अन्य ही उपयोग है।

वह गाना शुरू करता है, गाता है। लोग इक्ट्ठा होते हैं सुनने के लिए। लोग जो देते हैं, वह खा लेता है। उसे शाकाहारी भोजन चाहिए। मांसाहार नहीं करता। बस इतना सा नियम है। जो उसके पास होता है। इसके पास तो देने को, गाना गाने के अलावा कुछ नहीं है।

धीरे–धीरे लोग आते हैं, अपना सुख–दुख, अपनी समस्या की, अपनी पीड़ा, अपने बंध ान की बातें बताते हैं, आखिर उन्हें भी इनसे मोक्ष तो पाना ही है। अपने भीतर के बोध से, अपने बंधन से, पीड़ा से और अपने भीतर के बोझ से मोक्ष पाना है, मुक्ति पानी है।... तो लोग पूछते हैं कि –मेरी यह समस्या है। मेरी गरीबी की समस्या है। पति–पत्नी के बीच का झगड़ा है। मैं बूढ़ा हो गया हूं। मैं बूढ़ी हो गई हूं। मेरा बेटा नहीं मानता है। मुझे प्रेत पकड़े हुए है। मेरा सूअर भाग गया है। उसने चोरी कर ली है। पड़ोसी, या गांव का जो जमींदार

है या सवर्ण वर्ग है, मेरे ऊपर अत्याचार करते हैं। मजदूरी कराते हैं। वगैरह–वगैरह।

सारी फेहरिस्त सुनने के बाद भी कबीरपंथी साधु के पास एक ही जवाब है कि त्रिगुण फांस है। ... बाबा कुछ उपाय बताइए कि इन सब समस्याओं से कैसे मुक्ति मिले? तो वे बोले कि देखो भाई, मामला तो एक ही है कि इसे तो त्रिगुण फांस कहते हैं। यह त्रिगुण फांस और माया का खेल है।

अब तक माया की जो शास्त्रीय परिभाषा है वह ऐसी है कि क्या समझेंगे? अंतिम बात यह है कि इसे समझा ही नहीं जा सकता। यदि समझ ही लिया जाए तो माया तो रहेगी ही नहीं। और यह भी नहीं कह सकते हैं कि वह पूरी तरह से समझ में नहीं आई। वह है भी और नहीं भी है। है और नहीं है, का मेल है।

किसी विषय को हम चार प्रकार से कह सकते हैं, माया उनसे ऊपर है–वह चतुष्कोटि विनिर्मुक्त है, उसके ऊपर है। और हमारे दलित या कबीरपंथी समाज को उस त्रिगुण फांस को केवल समझना ही नहीं है बल्कि उसे उससे निकलना भी है और वह भी इक्कीस रोज के भीतर।

यदि है किसी में क्षमता तो चमत्कार करके दिखाएं। बाबा तो बहुत सारे हैं ब्रांडेड–अनब्रांडेड। मजेदार यह कि उनके शीर्ष लोग हमारे मित्र हैं। अभी यहां पर जो संस्थाएं हैं, जो महंत हैं, उनको यह करना नहीं आता। वैसे कुछ खास कबीरपंथी साधु हैं, जो उनके साथ बैठते हैं। उन्हें ही यह अक्ल आती है।

हां, तो वे हर समस्या का एक ही समाधान कहते हैं कि त्रिगुण फांस है, उसमें से निकलो। कुछ परिवार के लोग तो ऊब ही जाते हैं कि बाबा जी यह त्रिगुण फांस है क्या? यह तो बताइए, जिसमें हम बंधे हुए हैं। क्या हम ही बंधे हुए हैं?

ना, ना, केवल तुम्हीं नहीं बल्कि पूरा समाज बंधा हुआ है। वहां जो टर्मिनोलॉजी बैकवर्ड–फारवर्ड की, सुपीरियर–इनफीरियर की है, वे उस हिसाब से कहते हैं कि बड़कवा भी बंधा हुआ है। बड़कवा का प्रयोग वे कर रहे हैं, वही चलन में है। बड़कवा भी बंधा हुआ है और तू जो भुंइया–मुसहर है, तू भी फंसा हुआ है। उसके त्रिगुण फांस में उसे बंधे रहने दे, चिंता क्यों करें? तू अपना त्रिगुण फांस समझ और देख कि कमाल क्या होता है?

कहा कि तुम्हारा पहला त्रिगुण फांस सूअर है। सूअर के साथ सुबह–सुबह निकल जाता है, जहां कोई एक बार के बाद दोबारा नहीं जाना चाहता है। इंसान तो वहां मजबूरी में ही जाता है। यदि कोई मजबूरी न हो तो इंसान वहां जाए ही नहीं, टट्टी–पाखाना करे ही नहीं। तुम्हारे बच्चे,सूअर के पीछे ये सब बच्चे जाते कहां हैं? जहां कोई जाना नहीं चाहता, वहीं पर तुम्हारे बच्चे दिन भर सूअर के पीछे रहते हैं। यह तुम्हारी फांस है।

तुम्हारे पास सोचने का वक्त ही कहां है और बदबू से तुम्हारा दिमाग भरा पड़ा है और किसी चीज को सोचने की तुम्हें फुरसत ही नहीं है और फिर दोस्ती ऐसी कि एक ही

थाली में तुम भी खा लेते हो और जो बच जाता है, उसे सूअर को, उसी थाली में खिला भी देते हो। तो यह एक फांस है।

भुंइया की दूसरी फांस है–यह जो दारू है। यह तुम्हारी दूसरी फांस है। कमाते तो हो, आमदनी भी होती है, सूअर बेचने से भी कोई कम आमदनी नहीं होती है। ... वगैरह–वगैरह भी ... जो सरकारी सहायता मिलती है। लेकिन तू तो दारु पीता है और बेहोश हो जाता है, तो आमदनी का कोई हिसाब–किताब ही नहीं है। तू तो होश में ही नहीं रहता। इतना दारू पीएगा तो तू होश में ही नहीं रहेगा। यह तुम्हारी दूसरी फांस है। यह तुम्हारी दूसरी त्रिगुण फांस है।

और तीसरी त्रिगुण फांस तुम्हारा अंधविश्वास है कि तुमने वहम पाल रखा है और वह भी फांस है। अरे तूने मान लिया कि तू मुझसे या बड़कवा से छोटा है लेकिन किस बात का छोटा और बड़ा? तू भी त्रिगुण फांस में फंसा है, वह भी त्रिगुण फांस में फंसा है। और उनके घर की हालत भी खास कुछ अच्छी नहीं है। सूअर वे नहीं पालते हैं लेकिन दारू वे भी पीते हैं, उनके घर भी लड़ाई–झगड़े से बचे हुए नहीं हैं। यदि सूअर पालने वाली बात को छोड़ दें तो उनके भी हालत अच्छे नहीं हैं। यह दारू तुम्हारी त्रिगुण फांस है।

तो तीन त्रिगुण फांस हैं–एक तो है सूअर, दूसरी दारू और तीसरी जो उन्होंने कहा और तीसरी तुम्हारे अपने–आपको हीन मानने की भावना है। तू उसको मानता है कि वह बड़ा है, तू उसे बड़ा मत मान। यदि तू ना मानेगा तो क्या हो जाएगा? और मिलाकर देख ले, भूत–प्रेत में दारू में उनके घर में भी यही कहानी हो रही होगी। मिंया–बीबी की लड़ाई केवल तुम्हारे यहां ही नहीं होती। सर फुटौवल तो उनके यहां भी है। और जो दारू पीते हैं, वे ज्यादा बर्बाद हैं, जो कम पीते हैं वे कम बर्बाद हैं। इसे मिलाकर देख सकते हो कि वहाँ फांस है कि नहीं है? देख लो। और तीसरे को कहा कि वही अंधविश्वास है तीसरा, और उसका नाम दिया झोटैला।

तो सही डॉयलॉग का मतलब यह है कि आप कहीं भी दरगाह, मजार या, पीर बाबा, जहां कहीं भी जाएं भूत उतारा जाता है तो औरतें बाल खोल लेती हैं और वह बहुत तेजी के साथ गर्दन घुमा लेती हैं। वह हमलोग भी घुमा लें। थोड़ी देर के बाद प्रेतात्मा आ ही जाएगी। तो मामला यह बाल खोलकर घुमाने का है। भई भूत–प्रेत होता ही नहीं है। तो तुम समझते हो कि भूत–प्रेत चढ़ा है और इसीलिए तुम परेशान हो। दरअसल तो मामला है घुमाने वाला। ऐसे घुमाकर देख ले।

परिणामतः वह साधु त्रिगुण फांस की उस बात को जिस परिवार को समझा लेता है, वह परिवार के मुखिया सदस्य को समझा देता है कि कैसे किस परिवार को यह भ्रम खत्म कर रहा है और यह कैसे खत्म होती है, यह जो प्रेत बाधा है। बिना प्रेत के तो हिंदुस्तान का काम चलेगा ही नहीं और साहब हमारे शहर का तो कारोबार ही बंद हो जाएगा।

जो इन तीनों बंधनों से मुक्त हो जाते हैं, उनके हालात का आप अंदाजा लगा लीजिए। जो भुंइया इस त्रिगुण फांस को पहचान लेता है और तय कर लेता है कि मुझे इस

चक्कर में नहीं पड़ना है, मुझे बाबा ने समझा दिया, तो उसके घर में दूसरे दिन से सूअर बंद। गाय–बकरी आ जाती है। बकरी भी नहीं, गाय लाता है। वह पुराना वाला कारोबार बंद। दारू का खर्चा बंद। सफाई चालू। बच्चे का स्कूल आना–जाना शुरू और सवर्ण समाज में जो शरीफ हैं ... लंठों की बात मैं नहीं करता। उनके बीच सम्मान बढ़ जाता है।

कबीरपंथी का जो स्टेटस है, सोशल स्टेटस तो उसको तुरंत पहचानना आसान था कि कुर्सी मिलेगी। उसे कुर्सी मिले न मिले, उसका जो दर्जा है, हर पंचायत, मीटिंग में, एक साधारण भुंइया और कबीरपंथी भुंइया के मान में जमीन–आसमान का अंतर है। सवर्ण जानते हैं कि मेरे बाल–बच्चे दारू पिए होंगे, यह भुइयां तो दारू नहीं पीता।

इसके बाद, जो सबसे बड़ी बेशकीमती बात है कि कबीरपंथी साधु उसको आत्मविश्वास देता है कि वह जो सवर्ण समाज है, वह जो अत्याचारी समाज, जिसे हम समझ रहे थे, उससे लड़ना बेकार है क्योंकि वह तो त्रिगुण फांस में फंसा हुआ है। उसे अपने त्रिगुण फांस के बारे में पता नहीं। मैं उससे ज्यादा अक्लमंद हूं, मैं ज्यादा काबिल हूं। मैं भाग्यशाली हूं कि मुझे अपने त्रिगुण फांस का पता है। मैं अपने त्रिगुण फांस से निकल भी गया हूं।

अगर मैं इसे एक लाइन में खत्म करूं तो मोक्ष के दो ही मतलब हैं – हमारी परंपरा में भी, बौद्ध परंपरा में भी। आधी परंपरा वही रहेगी, आधे थेरवादी यह नहीं मानेंगे। यह त्रिगुण फांस है, तो इस त्रिगुण फांस से हमें मुक्त होना है। और उसके लिए हमें अपने त्रिगुण फांस को पहचानना होगा। यह एक अर्थ होगा। इसके परिणाम चमत्कारी होंगे जैसा कि मैंने बताया। दूसरा यह कि हमें कॉस्मिक ऑर्गाज्म चाहिए और वह पांच–दस मिनट वाला नहीं चाहिए। हमको वह ऑर्गाज्म चाहिए, वह संपूर्ण आनंद चाहिए, अर्थात हमें परमानंद चाहिए। और वह स्त्री–पुरुष वाले से गहरा होना चाहिए। जांच यही है। यह व्यवहार में है, कल्पना में नहीं।

तो सवाल यह है कि ये नस–नाड़ियां कैसे बर्दाश्त करेंगी? फिर उसके लिए रोज मरने की प्रैक्टिस करनी होगी। गोरख बाबा कहते हैं "मरो ए जोगी मरो, मरो मरन है, मीठो। ... मरो ए जोगी मरो, मरो मरन है मीठो। तिस मरन जोगी मरो, जिस मरनी गोरख मरि दीठो।" ऐ जोगी मरो, मरना बहुत ही सुखद है, बहुत मीठा है और वैसे मरना जैसा कि गोरख ने मरकर दिखाया है। मैं समझता हूं कि यह मोक्ष का एक और पक्ष हो गया और अधिक आनंद वाला।

आपलोगों ने सुनने की कृपा की, आप सभी को नमस्कार। धन्यवाद! ■

^thou dk vFk^ vkj ^vFki.k thou^

ये दोनो शब्द समूह और उनके बीच के संबंध भारतीय निर्गुण गानों की पहेली जैसे हैं। जीवन का अर्थ जब तय हो तभी तो पता चलेगा कि किसी का जीवन अर्थपूर्ण है या नहीं। इसी तरह 'अर्थ' शब्द के मतलब में भी अंतर हो सकता है, जैसे अर्थ मतलब धन–संपत्ति हो, तो मतलब कुछ और ही निकलेगा। शब्दार्थ वाला तो आप जानते ही हैं।

चर्चा के मुख्य आयोजक आदरणीय विजय प्रताप भाई से इसीलिए मैंने पूछ लिया था कि यहां अर्थ से आपका मतलब क्या है? उसी अनुसार मैंने इस चर्चा में अर्थ शब्द का मतलब निकाला कि जीवन का अर्थ माने– बनावट, औचित्य और सफलता। इसी आधार पर जीवन की सार्थकता का मतलब होता है कि जो जीवन की बनावट है, उसका जो औचित्य है, उन दोनों के अनुसार जीवन जीने की सुविधा और अवसर मिल रहे हैं, या नहीं? साथ ही, यह भी मतलब होता है कि जो जिया जा रहा है, उसके लिए जो संसाधन, सुविधा और अवसर मिल रहे हैं, वे जीवन की बनावट, औचित्य और सफलता से संगति रखते हैं या नहीं?

अपनी पसंद के अनुसार थोड़ा–थोड़ा भी अर्थ बदलते रहें तो यह विषय ऐसा है कि इस पर कई जन्मों तक चर्चा की जा सकती है। अतः मैंने अपनी सीमारेखा बांध ली है, उसी में अपनी बात रखूंगा।

मुझे जो थोड़ा–बहुत ज्ञान है, वह भारत के बारे में है। मैं न कभी विदेश गया, न वहां रहने की बात है। वहां की बातें सुनी–सुनाई, पढ़ी, टी.वी. पर देखी भर हैं, अनुभवात्मक नहीं हैं। इसलिए मेरे बिंब, शब्द और उदाहरण भी देशी ही होंगे।

भारत देश शास्त्र और परंपरा, दोनों दृष्टियों से विविधतापूर्ण है। कोई एकमात्र नजरिया रखने वालों को पहले अच्छे और बुरे, दोनो अर्थों में सांप्रदायिक कहते थे और विविधता वाले को स्मार्त, समयाचारी, सनातनी आदि। इस्लाम और ख्रीस्तपंथ के अपने भी अंतर हैं लेकिन वे अपनी–अपनी जगह मूलतः एकरूपता वाले हैं। अतः समझने की सुविधा के लिए उन्हें भी एक संप्रदाय या धर्म, आप जो कहें... मुझे अर्थ संप्रेषण से मतलब है, शब्द प्रयोग से नहीं। जैन भी अलग हैं लेकिन बौद्ध और खास कर महायानी से सिद्ध–सहजिया तक तो एक प्रकार से सनातनी ही हैं।

यह ऐसा विषय है, जिससे बड़ा गंभीर मामला शायद ही मनुष्य के लिए हो। मैं जैसे ही इस विषय पर सोचना शुरू करता हूं, इसकी विशालता में खोने और गहराई में डूबने जैसा भय होने लगता है।

ऐसा क्यों? क्योंकि यह मानवीय ज्ञान और चेतना का प्रश्न है, होश का प्रश्न है, समझदारी का प्रश्न है। हमारा अभ्यास इसके विपरीत है। हम पशु की भांति प्राकृतिक प्रेरण

ााओं, जरूरतों से जीवन का आरंभ करते हैं। अपनी मर्जी से न पैदा होते हैं, न समझने लायक बनते हैं। वह तो परिवार और समाज की कृपा से होता है।

परिवार या समाज भी यह कृपा मुफ्त में करना नहीं चाहता। उसके साथ वह भी अपना हानि–लाभ जोड़ता है – पूरी बेईमानी के साथ। भले ही परिवार के वरिष्ठ सदस्य और समाज के विभिन्न घटक अपने–अपने हक के दावे में खुद ही लड़ रहे हों।

इस हाल में परिवार और समाज के घटकों को यह भय सताता है कि उनकी संतान यदि सक्षम हो जाए, सहज संवेदनशील हो जाए, जीवन के बारे में सोचने लगे, अपने से निर्णय लेने लगे तो वे उसकी कुछ बातों को, सत्य को, औचित्य को तो स्वीकार करेंगे लेकिन उनकी बेईमानियों, मनमानी को नहीं। लोग खुद बेहोशी और सम्मोहन में जीते हैं और प्रयास करते हैं कि उनकी बौद्धिक और जैविक संतान भी सम्मोहित ही रहे और उनके कब्जे से बाहर न जाए।

इस माहौल में जीवन और सार्थक जीवन का प्रश्न दब जाता है। आदरणीय श्री विजय प्रताप जी ने मुझे बोलने को आमंत्रित कर मेरी जड़ता को झकझोरा और इस चिंतन के खेल में उतरने की चुनौती दी। अब मैं भी आपके सामने प्रस्तुत हूं।

सनातनी जीवनशैली विविधता का पर्याय है। फिर भी, वहां जीवन के अर्थ और अर्थपूर्ण जीवन के विरोध और विरोधाभास का शास्त्र और लोक परंपरा में कैसे समाधान ढूंढ़ा गया –मेरे वक्तव्य का मूल आधार वही होगा। इसके साथ, मैं प्रयास करूंगा कि उदाहरण बहुत पुराने या शुद्ध शास्त्रीय किस्म के न हों, बल्कि आज के और सबकी समझ में आने के लायक हों।

आरंभ तीव्र विवाद से करते हैं। समाधान बाद में निकालेंगे। इससे लाभ होगा कि आपका ध्यान विषय की गंभीरता तक सीधा पहुंच जायेगा।

जीव वह, जो जीता हो, जीवन से युक्त हो। उसकी पहली सार्थकता जीवन में है और दूसरी सार्थकता सुखमय जीवन जीने में। ठीक इसके विपरीत 'जीवः जीवस्य भोजनम्' सिद्धांत ही नहीं, अपितु चलन में भी है। एक जीव दूसरे जीव का भोजन है। अब क्या करें? इसी प्रकार की कई समस्याएं–दुविधाएं भारतीय समाज झेलता रहा है।

आज राष्ट्र और धर्म, मतलब–हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, सिख आदि की निष्ठाओं के द्वंद्व हैं और भारतीय राष्ट्र–राज्य के क्षेत्रीय वर्चस्व एवं तनाव के भी उदाहरण हैं। सभी सुखमय एवं सार्थक जीवन का ही दावा कर रहे हैं। उसके ऊपर से विकास नामक अजीबोगरीब परस्पर विरोधी अर्थों वाला बड़ा पैमाना भी आ गया है।

व्यक्तिविशेष या समूह या जातिविशेष के जीवन के साथ राष्ट्र–राज्य के तनाव तक की बात करना अपराध माना जाने लगता है। अल्पसंख्यक क्या हो गए, उन पर तो कुछ ध्यान ही न दीजिए, न भली दृष्टि, न बुरी। तब बहुसंख्यकों को उनके बारे में क्या करना

चाहिए? बस केवल लंपटों–लुटेरों, अपराधियों की करतूतों का मौन समर्थन, बस। चाहे मामला कश्मीर का हो, उत्तर–पूर्व का या भारत के किसी बीच वाले भाग का।

मेरा मतलब राजनैतिक चर्चा से फिलहाल नहीं है। लेकिन मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि ऐसे सवाल नए नहीं हैं। उनका आंशिक या पूरा समाधान भी ढूंढा गया है और उससे कुछ फार्मूले भी निकाले जा सकते हैं।

जीवन का प्रश्न एकांगी है ही नहीं। केवलवाद यहां चलता नहीं है – तन, मन, बुद्धि और जो आत्मा–परमात्मा मानते हैं, उनके लिए वहां तक का प्रश्न है। मैं आत्मा–परमात्मा से तन–मन तक आने का प्रयास न करके तन से आत्मा तक की बात करूंगा क्योंकि परमात्मा का मुझे ठीक से पता नहीं है। परमात्मा के मामले में ज्यादा बातें सुनी–सुनाई हैं।

हमें अपने तन, मन, बुद्धि और विश्राम में होशपूर्ण रहने पर आत्मा का अनुभव होता है। इसलिए इसका अस्तित्व स्वतःप्रमाणित है। उसके बाद की स्थिति में भरोसेमंद लोगों पर हमें भरोसा करना होता है –चाहे वह प्रत्यक्ष संसार की बात हो या किसी सूक्ष्म विषय की बात हो।

'जीवन का अर्थ' –इस वाक्यांश में 'अर्थ'शब्द को मैं क्या समझूं? जीवन का अर्थ तो जीवन ही हो सकता है? उसका विकल्प क्या हो सकता है? जीवन एक अनुभूति है– अपने होने की। उसके बाद उसमें अन्य अनुकूल–प्रतिकूल बातें जुड़ती हैं–खुद के होने की और दूसरों के होने की और उनके साथ जीने की। दूसरों के साथ जीने की बात जन्म से ही लागू है जिसके अनुसार अनेक संबंध बनते हैं। उनमें अनुकूलता–प्रतिकूलता के द्वंद्व हैं। उन्हें सुलझाने–उलझाने की कोशिशों में आपसी संबंध बनते–बिगड़ते हैं।

thou dk lgt vFkZ gS&

क. आहार, निद्रा, भय और मैथुन की जैविक जरूरत और उससे मिलने वाला सुख

ख. ज्ञान, कौतूहल निराकरण की विशेष मानवीय वृत्ति

ग. प्रजनन, वात्सल्य, सहजीवन, सामाजिकता, शत्रु–मित्र भाव में अनुकूलता–प्रतिकूलता तथा सामंजस्य

घ. तन, मन, चेतना और प्रकृति के साथ जीवन के रहस्यों के अनुभव की इच्छा

यहाँ तक की बातें तो सामान्य रूप से सब पर लागू हैं। इसके बाद की कई बातें समाज विकास के क्रम में जीवन के अर्थ के साथ लागू की गईं। जैसे–

1. संबंधों एवं सामाजिकता का आदर्शीकरण
2. सत्ता के बड़े राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक केंद्रों की संभावना
3. प्रकृति के रहस्यों के ज्ञान के साथ प्रकृति तथा मानव समाज पर नियंत्रण करने वाली व्यवस्थाओं का सृजन

ifj.kke

भयानक सत्ता संघर्ष, बड़े युद्ध, साम्राज्य और संगठित धर्मों का आरंभ, विकास तथा संघर्ष।

भारत में इन बातों पर खूब गहराई से विचार ही नहीं किया गया, अनेक व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयोग भी हुए। लेकिन कभी वे जीवन एवं प्रकृति के पक्ष में झुके तो कभी सत्ता एवं नियंत्रण के औजार बन कर रह गए। इस द्वंद्व, शास्त्रार्थ, प्रयोग और परिष्कार में कुछ मानक, बिंब एवं पदावलियां भी बनीं, जो काफी मतांतरों के बीच भी संवाद के माध्यम, औजार के रूप में स्वीकृत हैं। उनमें प्रमुख हैं चार पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

ये शब्द तो स्वीकृत हो गए किंतु इनके अर्थ पर विवाद कायम रहा। अतिवादियों ने भोग के अधिकार पर ही बहस शुरू कर दी। जीवन के सामान्य सहज अर्थ हैं – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। इनका भी कोई अलग उद्देश्य ढूंढा जाने लगा।

इन चारों के बिना तो जीवन चल ही नहीं सकता। तो इनसे अलग इनका उद्देश्य और प्रयोजन ढूंढा जाना एक बड़ा षड़यंत्र है। उदाहरण के लिए यह सिद्धांत कि जीवन नारायण के लिए है। इस संसार में नारायण का प्रतीक और प्रतिनिधि राजा है, इसलिए वह उसके लिए है।

जीवन धर्म के लिए है और ईश्वर के विभिन्न रूपों/प्रतीकों, रूपकों की पूजा ही नहीं, मठ–मंदिर और उसमें स्थापित मूर्ति मात्र की पूजा–प्रसन्नता के लिए देवदासी परंपरा तक बन गई। माना कि देवदासी प्रथा हो या नरबलि, उसके पक्ष में अन्य तर्क भी हैं लेकिन मूल तर्क तो यही है कि मानव तन–मन दूसरे के लिए है।

मैं वेदांत के किसी संप्रदाय के पक्ष–विपक्ष में तर्क नहीं देने आया। उसके सामाजिक पक्ष पर केवल ध्यान आकृष्ट कर रहा हूं। अद्वैत में यह पूरी जड़–चेतन सृष्टि और अपने तन–मन का भी मूल्य बराबर है लेकिन वैदिक, खीस्त पंथी या इस्लामिक ईश्वरवाद में न केवल हमारे जीवन का महत्त्व कम हो जाता है बल्कि हमारा जीवन परमात्मा या ईश्वर नाम की सत्ता के लिए होता है।

बस इस प्रकार सामाजिक शोषण के मूल बिंदु तय हो गए। अब रेखाचित्र की बारी है। वह रेखाचित्र बनता है ईश्वर के प्रतिनिधि, दरबार, आदेश जैसे मानव सुलभ बिंबों की सृष्टि से।

अद्वैत में यह सुविधा नहीं है। संपूर्ण सृष्टि और उससे परे सब, ज्ञात और अज्ञात दोनों ही, नर और नारायण, भगवान और भक्त – सबका अंतिम मान–महत्त्व एक है। दोनों एक–दूसरे के लिए हैं। दोनों का पूर्ण मिलन या भेदबोध की समाप्ति जीवन का लक्ष्य है। उनके अनुसार जीवन जीना सार्थक जीवन है। अतः क्षण–प्रतिक्षण संसार और जीवन को परत दर परत समझते जाने से भेदबोध कम होता जाता है।

इसी मामले में बौद्ध और अद्वैत वेदांती एक हैं। जीवनशैली और सामाजिक व्यवस्था के स्तर पर दोनों में अंतर हो सकता है। इसी कारण आदि शंकराचार्य जी को प्रच्छन्न बौद्ध भी कहा गया –छुपा हुआ बौद्ध।

अब मैं भारतीय दृष्टि में तन–मन की बनावट, सुख पाने की प्रेरणा और सुख पाने की प्रक्रिया की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं।

हमारे मन में रिक्तता है। तन में भी रिक्तता ऋणात्मकता है। कुछ मामलों में धनात्मकता भी है – खासकर स्त्री–पुरुष भेद से। इन दोनों से पाने एवं देने की इच्छा होती है। इच्छा पूरी हुई तो सुख, नहीं तो दुख।

सुख पाना जरूरी है। विषय और इंद्रिय के अनुकूल मिलन से जो सुख मिलता है, उस समय अपने शरीर के भीतर भी जीवन का पोषक अमृत रस टपकता है। योग–ध्यान से उस अमृत केंद्र तक का अनुभव किया जाता है और मनचाहा सुख भी पाया जा सकता है। यह सुख बाह्य सामग्री के भोग से लेकर सांस की ठोकर एवं दिल की धड़कन तक में है। उस समय अमृत झरता है। मैं यह बात प्रमाणित शास्त्र एवं अनुभव, दोनों से, पुस्तक और अनुभव, दोनों से कह रहा हूँ।

सृष्टि को जीवन चाहिए और वह भी प्रचुर मात्रा में। अतः उसने प्रजनन एवं यौन सुख की प्रेरणा को सबसे प्रबल बनाया। स्खलनकालीन चरम सुख 'आर्गाज्म' में सभी इंद्रियों की बहिर्मुखता पलट जाती है। इसी कारण रति क्रिया में सर्वाधिक सुख मिलता है। एक उम्र के बाद स्त्री–पुरुष की यौन क्षमता समाप्त होने लगती है और कुछ साल बाद समाप्त हो जाती है। इच्छा बची रहती है लेकिन नर–मादा के शरीर की न क्षमता रहती है, न आकर्षण। इस पर लोगों ने समाधान ढूंढा कि आनंद के भीतरी केंद्र से ही मजा लेते रहा जाए। अन्य अनेक भौतिक उपाय भी हैं ही।

मानव के सहज स्वभाव और जरूरतें प्राकृतिक रिक्तियां हैं जो भरती हैं और बार–बार बनती भी हैं। इनकी सीमा है। ये असीम नहीं हैं। इनकी पूर्ति भी बहुत कठिन नहीं है। कला, अध्यात्म मतलब आंतरिक सुख आदि भी इन सीमाओं में पूरे हो जा सकते हैं। उनके लिए अधिक संसाधनों की नहीं, अधिक समय की भले ही आवश्यकता होती है।

जरा आर्थिक पक्ष पर भी आएं। यह समस्त प्राकृतिक संसाधन किस लिए है? मानव और संसाधनों का रिश्ता क्या है? मानव–मानव तथा मानव–जीव के संबंध क्या हैं? इसलिए कि यहां तो मानव के बारे में भी सवाल उठाया जाता है कि घोड़ा घास से दोस्ती करेगा तो जियेगा कैसे? सवाल यह भी है कि क्या सच में घोड़े एवं घास के बीच केवल दुश्मनी का रिश्ता है?

लंबे समय तक भारत के राजाओं–रजवाड़ों के बीच युद्ध की चर्चा इतिहास में है। उस समय के जीवन संबंधी द्वंद्व भी तो होंगे? आज साम्राज्यवादी संघर्षों के साथ गृहयुद्धों की भी संख्या कम नहीं है। भयानक गरीबी, संसाधनों का अति केंद्रीकरण, भुखमरी – ये

सभी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। ऐसी अनेक बातें हैं।

मुख्यतः लालच और दूसरे को गुलाम बनाने की प्रवृत्ति वाले लोगों ने इस सहज तृप्ति के विरुद्ध षडयंत्र किए। इसके लिए अनके प्रकार की मानसिक रिक्तियां गढ़ी गईं। धर्म से लेकर बाजार तक जो खेल/षडयंत्र पहले हुए या आज हो रहे हैं, उनमें सबसे गहरा खेल नई मानसिक रिक्तियों के सृजन का है।

इच्छा यदि कमजोर हो तो उससे ऐसी रिक्ति नहीं बनती जो टिके और व्यक्तियों समूह/समाज को प्रेरणा या दिशा दे सके। इसलिए गहरी रिक्तियां पैदा करनी पड़ती हैं। बाजार के संदर्भ में इसकी चर्चा होती है लेकिन धर्म, समाज, परिवार एवं राजनीति के संदर्भ में इस बात की चर्चा बहुत कम होती है।

नकली जरूरतें इच्छा के रूप में पैदा की जाती हैं ताकि उनकी कोई खरीद करे, अपनी कमाई लगाए – भले ही उसके भोग के लिए न समय हो, न सामर्थ्य। मनुष्य की संचय वृत्ति को खूब हवा दी जाती है। उससे भी खपत ठीक से न हो सके तो मात्र नाम के भोग, रुचि–परिवर्तन आदि का हवाला देकर 'यूज एंड थ्रो' का सिद्धांत लाया गया। यह जो फेकना है, उसका कितना बुरा असर हुआ है, उसे पर्यावरण, प्रकृति की चिंता करने वाले ही नहीं, अब सामान्य लोग भी महसूस कर रहे हैं।

स्वीकृति, स्नेह, पारस्परिकता, वात्सल्य, आदर जैसी सहज प्रवृत्तियों को दोयम दर्जे का बताकर उनकी जगह भक्ति, समर्पण, अटूट विश्वास, बलिदान, धर्म तथा राजनीति के विभिन्न आदर्शवादी मॉडल – और तो और बाजार व्यवस्था के भी आदर्शवादी मॉडल, विकास के मॉडल, ब्रांड आदि के माध्यम से अनेक प्रकार की मानसिक रिक्तियों का सृजन किया जाता है। उसे खूब हवा दी जाती है।

फिर क्या? मनुष्य को उन्मादी बना दिया जाता है और अपनी इच्छा को जरूरत तथा उचित मानने वाला व्यक्ति औचित्य के प्रयोग और समीक्षा की आदत ही गंवा देता है। ऐसे व्यक्ति का जीवन जीवन के मूल अर्थ से विलग हो जाता है। वह दूसरों के द्वारा सृजित रिक्तियों के वशीभूत होकर जीता है।

इन रिक्तियों के बल पर ही ईश्वर की उपासना, संगठित धर्म तथा मॉडलवादी आधुनिक राजनीति, केवल विश्वास आधारित जीवन शैली, आदर्शवादी राष्ट्र, अपनी पसंद की दुनिया बनाने के प्रयास एवं संघर्ष शुरू होते हैं।

यह सवाल हो सकता है कि इससे हानि क्या है? हानि है, मानव की मूल वृत्तियों/जरूरतों का दमन, चाहे वह स्वयं के द्वारा किया जाए या दूसरों के द्वारा। पूर्वोक्त रिक्तियों के सृजन की सफलता दूसरों के मन पर कब्जा करने एवं खुद के सम्मोहित–समर्पित होने में है।

फिर तो हर प्रकार का उत्पीड़न–अत्याचार उचित माना जाने लगता है। इससे ढोंग और ठगी भी खूब बढ़ती है। धर्म, राष्ट्र, देश, बाजार और आदर्श के स्वयंभू मालिकों की

नजर पर लोगों को नाचना पड़ता है। अपनी इच्छा, पहचान एवं जरूरतों को ही नहीं, बाद में तो परिवार, धर्म, राष्ट्र, देश –सबको बलि बेदी पर न्योछावर करना पड़ता है।

ऐसे कामों के लिए आत्मदमन को गौरवान्वित करना पड़ता है। बुनियादी स्तर पर भ्रांति फैलानी होती है कि यह संपूर्ण प्रकृति मानव के भोग के लिए है। इस सिद्धांत पर एक मानव भी दूसरे मानव के भोग की वस्तु बन जाता है। मानव को अन्य संसाधनों के समान मानकर वहां भी 'यूज एडं थ्रो' लागू कर दिया जाता है।

असीम भोग की नैतिकता के कारण ही तो संपूर्ण प्रकृति, खासकर संसाधनों के रूप में पहचाने गए प्रकृति के भाग पर कब्जा जमाने की होड़ पता नहीं कबसे लेकर आज तक चल रही है। इस होड़ का परिणाम स्थानीय संघर्ष से विश्वयुद्ध तक है। गृहयुद्ध और क्षेत्रीय संघर्ष तो आजकल चलन जैसे हो गए हैं।

यह अभाव और तनाव का माहौल अनेक शारीरिक, मानसिक तथा मनोकायिक रोगों को उत्पन्न करता है। लोग कहेंगे चिंता क्यों? इसीसे तो दवा तथा चिकित्सा का बाजार चल रहा है। तब तो फिर चलने दीजिए, सब ठीक ही है।

मुझे आज भी जीवन जीने वाले और सार्थक जीवन जीने वाले लोग प्रायः मिल ही जाते हैं। द्वंद्व–दुविधाओं से उबरने वाले, उबारने वाले, दोनो प्रकार के उदाहरण हैं। आशा है यदि हम सार्थक जीवन की सफलता के दृष्टांतों पर परस्पर गौर करेंगे तो हमें भी जरूर सफलता मिलेगी और हमारा प्रयास सार्थक होगा।

l ek/kku

चूंकि यह मसला या मामला जो कहें, कोई नया नहीं है, इसके समाधान भी हर स्तर पर पहले भी सोचे गए। और इसकी एक कड़ी के रूप में हम भी विचार कर रहे हैं।

मैं अब कुछ दृष्टातों–उदाहरणों को आपके सामने प्रस्तुत करता हूं, जिन पर आम जन भरोसा करते हैं। कुछ शास्त्रीय बातें भी होंगी और भारत की बात है, तो धर्म–अध्यात्म की विधियां क्यों छूटेंगी!

बहुत पहले के भी अनेक उदाहरण हैं। फिलहाल समय सुविधा के लिए रामराज्य से शुरू करते हैं। मंथरा को कोई जितनी गाली दे ले, उसकी बात आज भी कोई कम लोकप्रिय नहीं है और गरीब उपेक्षित जनता का सहारा भी है कि 'कोई नृप होहि हमहि का हानि, चेरी छांड़ि न होएब रानी'। गरीब आदमी राजनीति की जटिलता में क्यों पड़े? उसे तो नौकर ही बनना है।

सिद्ध हर काल में हुए। वे जीवन को समझने एवं उसी को महत्त्व देने वाले रहे। इसलिए वैदिक, बौद्ध और जैन– तीनों ही धाराएं सिद्धों को स्वीकार करती हैं। उन्होंने न धर्म की परवाह की, न राजाओं की, न सेठों की। इन तीनों ने सत्ता का खूब मजाक भी उड़ाया और आम जनों को एक से एक उपयोगी उपाय भी बताए। प्रकृति और मानव के

मूल रूप की ओर ध्यान देकर जीने के रास्ते बताए। साथ ही, यदि धर्म, राज्य और अर्थ की सत्ता की ओर से चुनौतियां आईं तो डटकर मुकाबला भी किया।

सिद्धों में कुछ बड़े विद्वान हुए– जैसे सनक–सनंदन, आदि सरहपा, शांतिपा आदि अनेक लोग। वहीं धोकरिपा, चर्पटनाथ आदि बिल्कुल पोथी विहीन सिद्ध भी हुए। इनका साहित्य संस्कृत, अनेक प्राकृतों, अपभ्रंशों, बोलियों–सबमें है। इन सिद्धों ने उपाय बताया कि जो जहां है, वहीं से सांसारिक सुख ही नहीं, महासुख तक को पा सकता है। महासुख मतलब, जिससे अधिक सुख हो नहीं सकता। संसार में आर्गाज्म वाला और अपने भीतर में कॉस्मिक ऑर्गाज्म –शिव–शक्ति सामरस्य वाला।

न्यूनतम संसाधनों वाला किसी भी प्रकार की रोजी–रोटी हो, चाहे राजा का काम हो, विद्वान का या चोरी–चकारी अथवा नौकरी या भीख मांगना, औरत हो या मर्द, बच्चा हो या बूढ़ा – खुश होने का हक सबको है।

और उसके अनेक उपाय सिद्ध बताते हैं। ठंड सताए तो आग सेंकना सभी जानते हैं लेकिन ठंडे पानी से नहाना और शरीर में गर्मी देने वाली चीज खाना सिद्धों ने सिखाया। धन है तो केशर–कस्तूरी या स्वर्णघटित सोना मिली दवाएं खाएं। न हो तो सूअर की चर्बी खाएं। काहे की ठंड। पश्मीना सबको कहां से मिलेगा?

आप रसिक हैं, आपको खूबसूरती पसंद है, वह भी औरतों की, तो वेश्यालय की नौकरी कर लेने में क्या बुराई है! मछली खाना पसंद है तो मछुआरों की बस्ती में उनके बच्चों के साथ गाना गाते हुए मछलियों की फेंकी गई अंतड़ियों को धो–धोकर खाइए भी और उन पर हंसिए भी कि यह दुनिया किस प्रकार अंतड़ियों पर निर्भर है और इन्हीं की तरह घुमावदार है! बस फंसे नहीं तो सब ठीक। अंतड़ी फंसी तो जान भी जा सकती है। अंतड़ी से धनुष, धुनकी और सारंगी के तार भी बनते हैं।

ये पंडित विद्वान जिन बातों के बल पर रौब जमाते हैं, उनसे क्या डरना, क्यों प्रभावित होना? 'वो कहते कागज की लेखी, मैं तो कहता आंखन देखी'।

अपने शरीर, मन और प्रकृति को ठीक से समझ लें। फिर अपनी मस्ती, चाहे जैसे जिएं। मन में आए तो रोज किताबें लिखें, शबद और निर्गुण गाएं। और तो और, क्यों न नाचें? अकेले भी, साथ में भी। और अनेक खेल भी रचें। फिर सबके साथ नाचें, खेलें और गाएं।

सिद्धों ने तय किया इस खेल में, नृत्य में, मनोरंजन में जीवन जीने की अनेक कीमती बातों को डाल दिया जाय। उन्होंने कर भी डाला। इसलिए भारत का साधारण जन अभिजात लोगों से अधिक सजीव है। हालांकि अब तेजी से यह बात समाप्त हो रही है।

सिद्धों के बाद कबीर, रैदास आदि इसी परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं जो हर समय समाज के जड़ वर्ग के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करते हैं। इनमें कुछ सरलीकरण के पक्षधर हैं, जैसे– गोरखनाथ, मच्छेंद्रनाथ, रैदास वगैरह। कुछ जटिलीकरण के समर्थक हैं–जैसे कबीर।

यदि मैं अपने वक्तव्य के समापन और निष्कर्ष की ओर बढ़ूं तो कुछ सूत्रों में इन बातों को समेटने का प्रयास करूंगा क्योंकि यह तो जल्दी खत्म होने वाली बात ही नहीं है।

l=

1. तन–मन और प्रकृति के संबंधों को जानना, महसूस करना। तन और मन की बनावट की हर परत को खोलकर देख–समझ लेना। वह भी प्रायः खेल या रीति–रिवाजों के माध्यम से।

2. प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करना ताकि उससे न संघर्ष हो, न रोग आदि दुष्परिणाम हों।

3. अपने सामाजिक अस्तित्व को केवल भौतिक–सामाजिक रूप से स्वीकारना, आत्मिक रूप से नहीं। मनुष्य के रूप में मौलिक समानताओं को सहर्ष स्वीकार करना।

4. हर व्यक्ति के लिए देश, काल, पात्र और मात्रा के अनुरूप स्व को जानने, जीने और खुश रहने की विधियों की रचना तथा प्रशिक्षण, न कि दूसरे को अपने लिए प्रमाण या पूर्णतः अनुकरणीय मानना। न अपने को दूसरे पर लादना या किसी एक ही विधि, उपाय या जीवनशैली को सही बताना।

5. दुख तो आएगा ही। वह सुख का प्रतिरूप है। ऐसे में जो सुख ही नहीं भोग सकता, वह दुख क्या भोगेगा? अतः सुख भोगने एवं दुख सहने की क्षमता बढ़ा लेना।

इसी में पारस्परिकता, पूरकता, सौहार्द्र –सभी आते हैं। इस पारस्पारिकता, पूर्णता तथा सौहार्द्र के बाधक तत्त्वों की पहचान होनी चाहिए और निजी तथा सामाजिक स्तर पर उससे असहमति, बगावत होनी चाहिए। स्वस्थ तन–मन के लिए हर प्रयास में ही जीवन की सार्थकता है।

पिछली बार भी बहुत बोला था। बहुत बोला। मन तो पूरा आपके समक्ष परत दर परत रखने का है लेकिन समय की सीमा एक प्राकृतिक–सामाजिक सत्य है। अतः बहकने और नासमझी के लिए क्षमाप्रार्थी हूं। आपने अवसर दिया, समय दिया, इनके लिए आभार! धन्यवाद!! मैं यहीं रुकता हूं। उम्मीद करता हूं कि कुछ तो आप तक पहुंचा ही होगा। ■

thou ,o eR;

thou का अर्थ और सार्थक जीवन के एक पक्ष पर ही अभी तक चर्चा सिमटी रही। बिना मृत्यु यह कैसे पूरी होगी? संयोग–दुर्योग से मृत्यु भी सम्मुख आ गई। पिताजी का देहांत हो गया। मुझे बड़े बेटे होने के कारण दाह संस्कार, श्राद्ध आदि के लिए अब जाना है। मित्रगण मेरे लिए वापसी टिकट की जुगाड़ में लगे हैं। तुरंत अंत्येष्टि के लिए जाना है। ऐसे में थोड़ी चर्चा मृत्यु के साथ जीवन के संबंधों पर भी हो ही जाए।

मैं आपसे अनुमति हेतु आग्रह कर रहा हूं कि मैंने यहां पर चर्चा के लिए एक पर्चा बांटा है लेकिन अभी आधे घंटे पहले मुझे मेरे पिता की मृत्यु का समाचार मिला, जिसके कारण मैं मृत्यु और मृत्यु के बाद के जीवन संबंधी शास्त्र की बात करने की मनोदशा में नहीं हूं क्योंकि उसमें तो झूठी–सच्ची, दोनो बातें मिली हैं और मैं आपके सामने जिंदा हूं। ऐसे में जीवन एवं मृत्यु के बीच के संबंधों पर ही कुछ कह पाऊंगा।

मैं अनुपम जी के सामने बैठा हूं। अभी उन्होंने एक दिन पहले कहा कि जीवन पर बात हो रही है, तो मृत्यु पर बात क्यों नहीं हो रही? वहीं मैंने कहा कि यदि हम गांधी की मृत्यु की बात कर रहे हैं तो विनोबा की क्यों नहीं?

जीवन और मृत्यु में भारत के लोगों ने क्या संबंध जोड़ा? एक बार भगवान बुद्ध से अजातशत्रु पूछते हैं कि जब मरने के बाद कोई लौटकर नहीं आता तो कैसे पता चले कि मरने के बाद क्या होता है?

दरअसल जीवन और मृत्यु का जो रिश्ता है वो मृत्यु को फोड़ने का रिश्ता है। जीवन भी मृत्यु को फोड़ने का विषय है। जीवन के माध्यम से मृत्यु को फोड़ा जाता है। मौत को नकारकर जीवन नहीं चल सकता। तो फिर कैसे जिएं?

बुद्धिमान आदमी जब पैसे और विद्या की बात हो, तो ऐसे जीता है कि जैसे कभी मरना ही नहीं है और मृत्यु–अमृत्यु की जब बात हो तो ऐसे देखे कि मृत्यु सामने ही है।

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।।

ऐसा भतृहरि ने कहा है जो विद्वान और निरक्षर, दोनों में मान्य हैं।

मृत्यु की बात करें तो मृत्यु और जीवन के रास्ते प्रकृति के बंधनों के बीच मिलते हैं। वो संतुलन बनाए हुए हैं। यदि संतुलन की व्याख्या करना कठिन हो तो सर्कस में चलने वाली साइकिल का उदाहरण लिया जा सकता है कि साइकिल चलाने वाला तो एक ही पहिए से साइकिल चलता है और वह भी पूरा संतुलन बनाते हुए क्योंकि यदि उसने संतुलन बिगाड़ दिया तो खेल भी खराब हो गया और उसकी जान पर भी आफत।

तो उसका वह एक पहिया ही उसकी ब्रेक है और वही उसका हैंडल है तथा उसी की मदद से उसे संतुलन बनाना है। बचपन में हमारे दोस्तों की मंडली थी और हम शर्त लगाया करते थे कि किस तरह से हैंडिल को छोड़कर साइकिल चलाई जाए। तो, वह होता है संतुलन।

आजकल हम आकर्षण–विकर्षण की बात करते हैं लेकिन संतुलन की नहीं। तो साइकिल के बारे में बताना उतनी ही कठिन बात है। जीवन और मृत्यु के बीच में एक चीज है, अवस्था है, जहां से मृत्यु के रहस्य को फोड़ा जा सकता है, मौत को कब्जे में किया जा सकता है।

मैं हमेशा मौत से डरने वाला इंसान रहा लेकिन बचपन से मेरी ट्रेनिंग मौत की ही रही है। मेरे घर की पिछली दो–तीन पीढ़ियों में हमेशा यह सवाल उठता रहा कि हर आदमी एक ही तरह से नहीं मरता और मरने के बाद हर आदमी लौटता नहीं है तथा वह लौटकर आकर बताता नहीं है कि मरने के बाद उसके साथ क्या–क्या हुआ। इस स्थिति में कुछ लोग ऐसे हों, जो अपनी मर्जी से मरें और मरने के बाद आकर बताएं कि उनके साथ क्या हुआ है।

लेकिन ये तो होना मुश्किल है। फिर भी यदि मरने के पहले कोई बताकर जाए कि उसे कैसा महसूस हो रहा है या मौत के बारे में कुछ शोध हो तो पता चल सके कि मरना कैसा होता है।

मैं शोधकर्ता दल में पैदा हुआ लेकिन बहुत जद्दोजहद के बाद भी मौत के बारे में कुछ समझ नहीं आया। मेरे पिताजी से किसी ने कहा कि गांव के पास दो पक्षों में गोलीबारी की घटना घटी है। तब उन्होंने तय किया कि जहां गोलियां चल रही हों वहां जाकर खुद खड़े हो जाओ और देखो कि गोलियां लगती हैं कि नहीं।

हम एक बार एक मजदूर आंदोलन में भाग ले रहे थे लेकिन हमें कोई गोली नहीं लगी। अभी से कुछ ही देर पहले मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई। मरने से कुछ दिन पहले मेरी छत की प्लास्टर टूट रही थी तो हमने अपने पिताजी से कहा कि इस प्लास्टर को ठीक करवा देते हैं। लेकिन उन्होंने कहा कि नहीं, इसे ठीक न करवाओ; मैं मौत को देखते हुए मरते रहना चाहता हूं। लेकिन आखिरकार, बाद में उस प्लास्टर को हमने ठीक ही करवा दिया।

यह भी प्रश्न है कि किसी का जीवन कितना महत्त्वपूर्ण है। बंदूक का ट्रिगर न दबे ये भी महत्त्वपूर्ण है पर लोगों ने एक रास्ता ढूंढा–कि हमारे मन में एक अवधारणा है कि शरीर तो एक जन्म का है लेकिन मन तो एक जन्म का नहीं है। जब मन एक जन्म का है ही नहीं, तो ये जरूरी नहीं कि पिछले जन्म में हम एक ही योनि में थे और किस रूप में थे।

यह अनुभव से माना गया। यह कोई दार्शनिक कल्पना नहीं है। ईश्वर के बारे में विवाद है लेकिन जन्म लेने वाली व्यवस्था/आत्मा के बारे में विवाद नहीं है। अस्तित्व बोध

ही प्रमाण है। जबकि चार्वाक छोड़ बाकी सारे लोग पुनर्जन्म को मानते हैं। ध्यान करते समय पुराने जन्म और उसके पहले की जो अपनी मृत्यु है, उसके संचित अनुभव तक पहुंचने की व्यवस्था है।

बाकी का खेल सत्ता का खेल है। उसका उपयोग किया जाता है। जैसे सत्ता चलती है, उसके हथकंडे अपनाए जाते हैं। वैसे ही धर्म का भी उपयोग होता है।

होश में मरना और जीते जी मरना, दो पैमाने हैं। तो जो होश में जी ही नहीं पाएगा, वह होश में मरेगा क्या? जो सुख ही नहीं झेल पाएगा, वह दुख क्या झेलेगा?

इतने प्रचुर संसाधनों के बाद भी, कुछ लोग सुख भोगने की हालत में भी नहीं रहते, तो वे लोग भला दुख कैसे भोगेंगे? जिनके खाने से लेकर दांपत्य संबंध तक बदलते रहेंगे, तो भला वे लोग सुख लेने की हालत में कैसे रहेंगे? मृत्यु से डरना नहीं है। आपको मृत्यु को फोड़ना है।

बाबा गोरखनाथ ने कहा 'मरो ए जोगी मरो। मरो मरन है मीठो'। आशय यह है कि गोरखनाथ जी कहते हैं कि ऐसी मौत मरना कि जब आप शारीरिक और चिकित्सकीय रूप से (फिजिकली और क्लीनिकली) मर जाएं फिर भी आप न मरें, अर्थात बाह्य जीवन/अनुभूतियों से आंख मूंदने के बाद भी देख पाएं, देखते–समझते रहें। तो इसी से प्रेरित होकर बहुत लोगों ने सोचा कि बच्चों की आंख पर पट्टी बांधकर पढ़ना सिखाया जाए। ऐसा संभव है। सच तो यह है कि हम अपने आरंभिक ग्रंथों में लिखी बातों को भूल गए। पृथ्वी की पहचान नाक से होती है।

मरण मीठा है। स्त्री–पुरुष के मिलन का वो न्यूनतम और विशालतम रूप हमारा लक्ष्य है तथा मृत्यु उसका पड़ाव है। आंखें उसे पा सकती हैं जो शारीरिक और चिकित्सकीय रूप से मर गया लेकिन फिर भी मरा नहीं। सृष्टि स्त्री–पुरुष के मिलन वाली ही सृष्टि थी। आर्गेनिज्म क्षणिक मृत्यु की सृष्टि है; उसके बिना सृष्टि नहीं होती। प्रकृति को जीवन चाहिए। प्रकृति ने पुरस्कार के रूप में हमें वह सुख दिया है। उसकी तैयारी है।

कॉस्मिक आर्गाज्म –लक्ष्य ... वो एक मीठा मधुर मरण है। शारीरिक और चिकित्सकीय है। तो जब तक शरीर ठीक–ठाक है तो 2–4 बार जीकर मर लिया जाए। तभी पता चल जाएगा कि जीवन में कैसे मरें और हमारी सभी उलझनें और गांठें खुल जाएंगी कि एक जन्म से, एक जीवन से संबंधित बात अनेक मृत्यु और अनेक जन्म संबंधी बातों में कैसे हो सकती है?

सामान्य विपश्यना का अभ्यास करें तो प्रथम चरण में पापमुक्ति का खेल होता है। आप खुद को जानवर मानें, तभी तो दूसरे को जीव मान सकेंगे। यदि हम उसमें योग्यता जोड़ें, तो विशेषण अर्थ को सीमित करता है। स्वयं में जितने विशेषण लगें तो अर्थ सीमित हो जाता है।

जीवन–मृत्यु प्रकृति का विषय है, समाज का नहीं। जब ये जीवन–मृत्यु का संबंध

है तो उसकी तैयारी भी हो, एक आर्गाज्म झेलने के लिए। कुछ सेकंड में नहीं, बल्कि बहुत अधिक समय लेकर हो। हम सांस लें, बलपूर्वक लें, लेकिन वो प्राणायाम नहीं। ये तो घड़ी का कांटा है। प्राण तो वह है जो पूरे शरीर में तत्वों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाए। वह प्राण और वायु है। ये घड़ी के कांटे की तरह है। इसमें कुछ गड़बड़ी हो तो उसे मिलाया जा सकता है। यदि हममें से कोई भी सांस को सोचकर लें तो क्या वो जिंदा रह सकते हैं ?

मृत्यु प्राणों का अंत नहीं है। शरीर की घड़ी बंद होना मृत्यु नहीं है। किसी ने कहा कि उसके मरने से पहले उसे जिंदा मत जला देना। एक बुजुर्ग ने अपनी दृढ़ धारणाओं के आधार पर बताया कि हम वैष्णव हैं इसलिए हम शिव की नगरी में नहीं मरेंगे। वे बोले कि मैं 95 साल का हूं तो क्या मैं मर जाऊं?वह भी शिव की नगरी काशी में?

मरना तो वह है जो अपनी पसंद की मौत मरे कि आज मुझे मरना है। एक दिन उन्होंने कहा कि उसके लिए लोगों को बुलाओ, तुलसी तथा गंगा जल लाओ। उस समय उन लोगों ने वहां पर मेरी ड्यूटी लगाई कि मैं उन बुजुर्ग का सिरहना लगाऊं और उनके सिरहना पर बैठकर देखूं कि उनकी मृत्यु कैसे होती है। उस समय मैं बहुत छोटा था इसलिए मेरे मन में कौतूहल था कि मैं भी देखूं कि वह कैसे मरते हैं।

तभी एक श्रीमान आए जो उनके बेटे थे। वे बोले कि अभी आपको मरना नहीं है क्योंकि अभी हमारे घर की लिपाई–पुताई नहीं हुई। तो आप मर नहीं सकते। बाप कह रहा है कि मरना है। पर बेटा कह रहा है कि आपकी मरने की चाबी तो मेरे पास है। आप कैसे मर सकते हैं? हम आपके मुंह में तुलसी और गंगा जल डालेंगे, तभी न आप मरेंगे? तो अभी हमारी उतनी तैयारी नहीं है इसलिए आप मर नहीं सकते। खैर! ऐसे में उनकी मृत्यु दो घंटे के लिए टल गई। यह कोई काल्पनिक बात नहीं है क्योंकि मैं इसका साक्षी रहा हूं।

उस समय मैं कम उम्र का था। तो मुझे बड़ा अजीब सा लगता था यह सोचकर कि आखिर मुझे 'मौत' क्यों पढ़ाई जा रही है। मैं अपने सामने किसी को मरते नहीं देख सकता और मैंने बहुत कम लोग ही अपने सामने मरते देखे हैं। देखो प्रकृति का विधान! आज भी मेरे साथ वही हुआ कि मैं यहां दिल्ली में हूं और मेरे पिताजी का बिहार में देहांत हो गया।

खैर, जीना सत्य है तो उसके लिए मौत को स्वीकारो। मौत दो तरह की होती है। एक बौद्धिक स्तर की है। मृत्यु अभीष्ट रही है। जो शरीर जीने लायक न रहे या जिसका जीने से मन भर जाए तो फिर जिया क्यों जाय? दूसरी बात कि मौत को बौद्धिक रूप से नहीं स्वीकार करेंगे तो कैसे चलेगा? अपनी ही नहीं, दूसरे की मौत का भी खयाल रखना है।

हत्या–आत्महत्या का रूप ... इसे बौद्धिक रूप में स्वीकार करते हैं, तभी जीवन–मृत्यु का संबंध होता है। तो मेरे हिसाब से हर समय मौत का ख्याल रखना पड़ता है। यदि किसी की ये इच्छा है कि मौत को फोड़कर उसके रहस्य को जानें, तो मौत को बौद्धिक रूप से समझकर काम नहीं चलेगा। तब तो मृत्यु को दिल से स्वीकार करना होगा। जब

बचाव करना है तो उसे दूर रखना है। यहां मौत को अपनाना होगा। तो ऐसे में मृत्यु संबंध
ी मत–मतांतर का पक्का समाधान करने का खुद के मरने के अलावा कोई उपाय नहीं है, और यह संभव है।

जो मौत के पीछे पड़ते हैं, उनसे शिकायत होती है कि ये तो एकांत गुफा वाले हैं। तो ये केवल अकेले मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। तो उससे तो कुछ भी नहीं होगा। वो, कहां .... अकेला जन्म–जन्मांतर का, जो अपने ही मन की उलझनों को खोलने में लगा है, तो वो नैतिकता को क्यों स्वीकार करे। 'वो कहते कागज की लेखी, मैं तो कहता आखन देखी।'

बाकी तो सत्ता का सुख है। कोई कहता है कि हमें 10 हजार करोड़ रुपए चाहिए लेकिन भौतिक शारीरिक सुख से बड़ा कुछ नहीं होता।

एक स्तुति है। आमतौर पर इन बिंबों पर ध्यान देना भारतीय सामान्य समाज के लिए वाजिब नहीं है। एक व्यक्ति के मरने का क्यों सोचें, प्रलयकाल का सोचा जाए कि ये प्रलय है। उस प्रलयकाल में प्रलय भी हो रहा है और सृष्टि भी। मानव शरीर का बिंब लें, तो यह ढांचा है। दो नरकंकाल उस प्रलयकाल में सृष्टि करने के लिए नाच रहे हैं।

कल्पांतक्रूरकेलिः क्रतुकदनकरः कुन्दकर्पूरकान्तिः,

क्रीडत्कैलाशकूटे कलितकुमुदिनीकामुकः कान्तकायः।

कंकालः क्रीडनोत्कः कलितकलकलः कालकालीकलत्रः,

कालिन्दीकालकंठः कलयतु कुशलं को पिकापालिको नः।।

ये कापालिक की प्रार्थना है कि ऐसा व्यक्ति जो नरकंकाल रूप में आया, दोनों हाथ में कपाल हैं, वे डांस, रोमांस कर रहे हैं तथा सृष्टि करना चाहते हैं। तो जीवन और मृत्यु, एक साथ देखने की आदत पड़ जाए, तब उस मृत्यु को देखने की इच्छा होती है। आप मुर्गे की दुकान में देखें तो वहां मुर्गा भी है और अंडा भी। देखें तो वहां मुर्गे की गर्दन कट रही है लेकिन फिर भी दूसरा मुर्गा दाना चुग लेता है, पानी भी पीता है और रतिक्रिया भी करता है। लेकिन बकरे–बकरियां, गायों की कत्लखाने के पास जाते ही जुगाली बंद हो जाती है। ये आकाश में उड़ नहीं पाते। इनके पास वह सुख नहीं, जो पक्षियों के पास है।

हमें आसमान में उड़ने का, पंख लगाने का अनुभव नहीं है। इसलिए जैसे ही हमारे किसी अपने की मौत होती है तो हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, याददाश्त भ्रष्ट हो जाती है। जो होश में मरते हैं उनकी याददाश्त गड़बड़ नहीं होती। उनका श्राद्ध वगैरह करने की भी कोई जरूरत नहीं होती।

मैंने पिछली बार यहीं पर एक व्याख्यान दिया था। उसमें कहा था कि 'सबको प्रेत पकड़े हुए है। मतलब कि जिसके देश और काल के बोध से ... चीजें छूट गईं, उसे प्रेत पकड़ लिया। तो उसकी प्रेतबाधा का निवारण करना होगा। जो मर गया, उसका तन तो मर गया लेकिन मन बच गया। तो उपाय है कि उसे समय के अंतराल का बोध कराओ।

उसे इस तरह होश में ला सकते हैं। अब यह हो पाएगा कि नहीं हो पाएगा कहना कठिन है।

मेरे पितामह, बाबा ने एक दिन मुझसे पूछा, ''मेरे पिता वैष्णव थे तो वो विष्णुलोक में गए। मैं तो गांधीवादी हूं। तो पता नहीं गांधीवादियों के लिए कोई लोक बना है कि नहीं। तो पता नहीं मैं किस लोक में जाऊंगा?''

मैंने एक बार किसी से पूछ लिया कि गांधी वालों का लोक बना कि नहीं बना और पूछा कि हमारी मुक्ति होगी? तो वे बोले मुक्ति में मजा नहीं है। तो मैंने पूछा क्यों? बोले कि यह जो 'स्व' होता है, उसका विस्तार होता है। मैं मेरा, मेरा स्व। अब जब सभी मुक्त हों, तभी न किसी भक्त संत या बड़े स्व वाले सामाजिक व्यक्ति की मुक्ति हो सकेगी।

वृद्ध बाप का मरना देखना आसान है। वह एक बौद्धिक मृत्यु थी इसलिए शायद मैं आज बोल रहा हूं। यदि मेरा बेटा मौत के कगार पर होता तब शायद मैं ऐसे बोल पाता कि नहीं?

पिछली बार हमलोग दिल्ली में आए थे, तब मुझे, मेरी पत्नी और बेटे को डेंगू हो गया। तब मैंने सोचा कि डेंगू तो हो ही गया है और मैंने अपने बेटे को कहा कि या तो मौत को स्वीकार करे या फिर पराक्रम कर उससे लड़ जाएं। तो हमने कहा कि चलो, इस बार लड़ा ही जाए। और हम लड़े। पर यह कोई सुख नहीं, पूरी व्यवस्था है। इसे जाना, सीखा और जिया जा सकता है। जुबानी नहीं, जीने वाली बातें हैं।

हमारे यहां पर तीन गांठें मानी गई हैं। ब्रह्मा की गांठ– वह जन्म से जुड़ी होती है। यह प्रकृति का ऋण है कि आपको किसी ने पैदा किया तो आपको भी किसी को पैदा करना चाहिए।

दूसरी गांठ है विष्णु की। विष्णु एक वेष्टन मतलब बेठन है, जिसने सबको लपेट रखा है, जिसने सभी रिश्ते बना रखे हैं। जिसमें रिश्तों की गांठ है। और वह बिना जिए पता नहीं चल सकता तथा जिनके साथ रिश्ते की गांठ बनाई, उसे सुलझाए बिना कुछ संभव नहीं होगा। तो मैंने जिससे जो लिया–दिया, उसका हिसाब बराबर कर दिया। इसके बिना तो हम स्वस्थ तो नहीं ही मर सकते।

रुद्रया महेश वाली समझ की गांठ है कि मानव प्रकृति का छोटा सा भाग है, उसे स्वीकार करो। और उसे स्वीकार करते ही साइकिल वाला उदाहरण याद आ जाता है। उसके बीच ही जीवन का संतुलन है।

मृत्यु और जन्म केवल घटना नहीं हैं। उसके बाद अनेक घटनाएं शुरू हो जाती हैं। जो मर गए, उनका पता नहीं। पर जो जीते हैं ... सभी में जीना होता है। काल, शांति, सापेक्ष और कुछ नहीं। उसमें भी सापेक्ष संतुलन है, दो गतियां जब समांतर हो जाती हैं तो गत्यंतर का बोध समाप्त हो जाता है।

मैं तर्क की जगह सीधी–सीधी बात कर रहा हूं। यदि थोड़ा पराक्रम हो तो बहुत कुछ हो सकता है, जैसे मैं ठंडे पानी से नहा लेता हूं लेकिन यदि गर्म पानी से नहाकर आरामदेह स्थान पर रहने की व्यवस्था न हो तो ठंड लग जाती है। ठंड से बचने के लिए केसर–कस्तूरी की दवा खा ली जाए। उसके अलावा और भी बहुत सी छोटी–बड़ी चीजें हैं। वो न मिलें तो अंडा ही खा लें। शाकाहारी, मांसाहारी सभी लोगों के लिए व्यवस्था है।

मृत्यु के लिए फोड़ने वालों ने कोशिश की कि मौत का डर भागे। मैं भी आपसे मिलकर अपने डर से ही भाग रहा हूं। 50 साल के बाद वालों को मौत की तैयारी कर लेनी चाहिए। मैं भी 57 पार कर चुका हूं।

टाइम के अंतर को मिटाने को काल और काली की साधना कहते हैं। सूरज और चांद आसानी से दिखने वाले नक्षत्र हैं। आज बहुत से लोग आसमान को देखने की हिम्मत गंवा बैठे हैं। ...

जीवन–मृत्यु का संबंध और बीच से निकलने का रास्ता है, उसे मैंने भी महसूस किया है। मैं भी उसका राही हूं। हम ये जिम्मेदारी लें कि शरीर छोडने के बाद कोई व्यक्ति खड़ा होकर मृत्यु की बात करे। हम तो कई बार मरकर जी गए। कोई भरोसेमंद आदमी बताएं तो ठीक है, नहीं तो खुद मर जाएं।

अनुपम मिश्र (अध्यक्ष) : रवीन्द्र पाठक जी को आज अभी अपने व्याख्यान से पहले ही अपने पिता की मृत्यु की खबर का पता चला लेकिन उसके बाद भी इन्होंने आज जीवन और मृत्यु के दो पहियों की साइकिल बहुत ही बेहतरीन संतुलन के साथ चलाई। ■

लेखक का परिचय

डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक, बिहार के एक परंपरागत ग्रामीण परिवार से आते हैं, जो गांधी, विनोबा, जयप्रकाश की धारा से जुड़ा रहा। पाठक मगध विश्वविद्यालय के एक कालेज में पालि भाषा पढ़ाते हैं साथ ही पर्यावरण, जल सरंक्षण, परंपरागत शिक्षा के पक्षधर आंदोलनों से जुड़े रहे हैं। निरंतर लेखन एवं कई सामाजिक गतिविधियों में लगे हुए हैं और ये भारतीय दर्शन एवं संस्कृत–प्राकृत के भी जानकार हैं। पारंपरिक स्वास्थ्य रक्षा, पारिवारिक योग साधना तथा तंत्र साधना की परंपरागत सामाजिक पद्धतियों के व्याख्याकार हैं।

जन्म – **25.9.1959**
मो. – **9431476562**
ई मेल – rkp.gaya@gmail.com

पुस्तिका परिचय

डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक ने **जीवन का अर्थ और अर्थमय जीवन** श्रृंखला के अंतर्गत कुछ व्याख्यान दिए थे। इनमें चार पुरुषार्थ वाले व्याख्यान को स्व. पर्यावरण विद् अनुपम मिश्र ने इतना पसंद किया कि स्वयं संपादन करने का प्रस्ताव दिया था और प्रकाशन की भी सलाह दी थी।

जनाब आरिफ मुहम्मद खां, जिन्होंने एक सत्र की अध्यक्षता भी की थी, उन्होंने भी इसे खूब पसंद किया। उसे ही संपादित कर व्यापक पाठकों एवं सामाजिक चिंतकों के लिए यह पुस्तिका प्रकाशित की गयी है।

‘हरित स्वराज’ का विचार मनुष्य से प्रकृति के रिश्ते को समाज के राजनैतिक, सामाजिक, साँस्कृतिक पक्षों के लोकतान्त्रिक आधार से जोड़ता है। ‘दक्षिण एशियाई हरित स्वराज संवाद’ (सैडेड) विभिन्न वैचारिक प्रवाहों को संजो कर उनके बीच संवाद को प्रोत्साहित करता है ताकि ‘हरित स्वराज’ के बहुआयामी विचार की गहराई तक पहुँचा जाए। दक्षिण एशिया के संदर्भ में ‘हरित स्वराज संवाद’ ऐसे व्यापक प्रवाहों का हिस्सा है जो स्थानीय समुदायों से लेकर देश व दुनिया के स्तर पर मनुष्य जीवन के लोकतान्त्रीकरण के लिए प्रयासरत् हैं। यह प्रकल्प सेन्टर फॉर द स्टडी ऑफ डवेलपिंग सोसाइटीज़, लोकायन, केपा व सिएमेनपू फाऊन्डेंशन (फिनलैण्ड) की साझी सृजनात्मक पहल के बतौर शुरू हुआ था।

‘दक्षिण एशियाई हरित स्वराज संवाद’ एक चौपाल है। इसके द्वारा प्रकाशित पुस्तकें लेखक के विचार प्रस्तुत करती हैं ताकि समाज में चल रहे संवादों की झलक मिले। संवाद की इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए पाठकों से गुज़ारिश है कि वह इसमें भागीदार बनें व अपने विचार हमें लिख भेजें।

दक्षिण एशियाई हरित स्वराज संवाद
South Asian Dialogues on Ecological Democracy (SADED)
www.saded.in

ISBN
978-93-81144-61-9